

UNIVERSAL
LIBRARY

OU_180303

UNIVERSAL
LIBRARY

कारावास

(जेल-जीवन की पृष्ठभूमि पर लिखित
कुछ हृदय-द्रावक कहानियाँ)

लेखक

श्री यश

सम्पादक 'हिन्दी मिलाप'

जालन्धर सिटी

१९५२

आत्माराम एण्ड संस

प्रकाशक तथा पुस्तक-विक्रेता

काशमीरी गेट

दिल्ली ६

प्रकाशक

रामलाल पुरी

आत्माराम एण्ड संस

काश्मीरी गेट, दिल्ली ।

मूल्य डेढ़ रुपया

मुद्रक

चमनलाल कन्नियाल

अमर भारत प्रेस

दरियागंज, दिल्ली ।

मन की बात

कारावास से मेरा सम्बन्ध आज का नहीं, तब का है, जब वह हथकड़ियाँ मेरे छोटे-छोटे हाथों के लिए बहुत बड़ी थीं। मुझे अच्छी तरह याद है, सन् १९३० में जब पहली बार पुलिस ने मुझे हथकड़ी पहनाई तो मेरे हाथ नीचे धरते ही वह टुलककर अलग जा गिरी थी। यह बात आज से ग्यारह वर्ष पहले की है। ग्यारह वर्ष बाद, जब मैं चौथी बार पकड़ा गया तो वही हथकड़ी, जो उस दिन टुलक गई थी, मेरी कलाई पर ही पूरी नहीं आई। उस हथकड़ी के लिए मेरी कलाई बहुत मोटी थी।

जाने क्यों, कारावास मेरे लिए सदा से आकर्षण की वस्तु रहा है। बचपन में ही कारावास की इन काली-काली सलाखों को चूम लेने के लिए मेरा मन आकुल हो उठा था। यौवन की अपलादिका में यह चाह जैसे एक उत्सुक लालसा बन गई। और इसी लालसा की हविस मुझे अपनी इस अल्पायु में ही पाँच^१ बार वहाँ ले गई, जहाँ मैं रात के घिनौने अन्धरे में सलाखों से चिपटा माँ की आज़ादी खोजा करता था। इस निस्सहाय बंदी-जीवन में मुझे सदा वह सुख मिला जो टीस और कसक में मिलता है। जब कभी मैं अकेला बैठकर उस भँवरे की कल्पना करता, जो कमल के प्रेम में सुध-बुध भूला उसी में जकड़कर अपनी प्राणाहुति दे डालता है, तो मैं आनन्द से विभोर हो

१ यह १९४१ की बात है। उसके बाद मुझे कई बार और कारावास की सलाखों को चूमना पड़ा।

उठता । कभी-कभी यह आनन्द उन्माद बन जाता और मैं भावावेश में सिहर-सा उठता ।

बन्दी-जीवन हमारे-आपके जीवन से सर्वथा भिन्न है । कष्ट-क्लेश तो कहीं भी षीछा नहीं छोड़ते, परन्तु बन्दी के जीवन का सबसे बड़ा कष्ट उसके मस्तिष्क का यह विचार है कि वह बन्दी है । यह विचार एक भारी बोझ-सा बन कर सदा उसके मस्तिष्क पर छाया रहता है । अरस्तू के कथनानुसार मानव स्वतन्त्र जन्मने पर भी हर जगह जंजीरों से जकड़ा पड़ा है—तो भी मानव स्वतन्त्रता-प्रिय है । वह केवल स्वतन्त्रता ही नहीं, स्वच्छन्दता भी चाहता है । वह किसी तरह की बन्दिश पसन्द नहीं करता । प्रतिबन्ध के विरुद्ध उसके हृदय में भीषण विद्रोह की धधकती ज्वाला है । कारावास में इसी ज्वाला को अस्थायी रूप में शान्त करते समय मानव का मन कराह उठता है । बन्दी-जीवन की यही सबसे महान् पीड़ा है । इसी से पीड़ित बन्दी ऐसे-ऐसे कर्म कर डालता है कि मानव को उन पर कभी विश्वास ही नहीं होता । कारावास के इतिहास में ऐसी घटनाएं घटी हैं जब कि निहत्त बन्दियों ने कई-कई हजार फुट लम्बी-गहरी सुरंगें खोद डालीं, लोहे के दर्वाजे तोड़ डाले और वे ऊँची-से-ऊँची दीवारें फाँद गये । ऐसे कर्म मानव तभी करता है, जब आस-पास का वातावरण उसके लिए अक्षय हो उठे ।

बन्दी का एक अपना संसार होता है । कारावास के कोठ उसके इस लोक को सीमा-बद्ध करते हैं । कोठ के पार परलोक है । उसके इस संसार में नित्य कुछ नये लोग आते हैं और कुछ पुराने चले जाते हैं—बिलकुल इसी तरह, जिस तरह हमारे इस संसार में होता है । आने वाला अपनी इच्छा से नहीं आता और जाने वाला इच्छा होने पर भी वहाँ ठहर नहीं सकता । जैसे मृत्यु आने पर कोई भी यहाँ रुक नहीं सकता, इसी तरह बन्दी की रिहाई का जब

रवाना आ जाय तो वह चाहने पर भी वहाँ रह नहीं सकता। उसे जाना ही पड़ता है।

X

X

+

कारावास पढ़े-लिखे लोगों के लिए तब जानकारी का कोई स्थान था, जब कि अभी साधन-प्राप्त जनता ने इसे स्वतन्त्रता की राह एक मंजिल न माना था। जब से बापू के आदेशानुसार भारत की पण्डित जनता ने इसे 'अपना' लिया है, तब से सहस्रों लोगों के लिए कारावास घर-सा हो गया है। ऐसी अवस्था में मैं 'अन्दर' के सम्बन्ध में 'बाहर' वालों को कुछ नव-नूतन बताने में असमर्थ हूँ। परन्तु बन्दी-जीवन में कई बातों एवं घटनाओं का मेरे मन पर गहरा प्रभाव हुआ। उन्हें व्यक्त करने के लिए मैंने 'क्रिक्शन' का आश्रय लिया। इस संग्रह में कारावास से सम्बन्धित जो कहानियाँ हैं, उनमें मैंने बन्दी-जीवन के कुछ पहलुओं को चित्रित करने का प्रयत्न किया है। इनमें आपको कारावास की भाँकी नहीं, झलक मिलेगी। इच्छा तो है कि इसे भाँकी बनाने की थी, किन्तु समयान्तर से ऐसा कर नहीं पाया। सम्भवतः इनमें आप निराशा और दुःख की झलक ही अधिक पायें और यह अनुमान कर लें कि कारावास कष्टों का ही घर है। इसमें सन्देह भी नहीं कि वहाँ खुशी से कोई नहीं जाता। नैतिक दृष्टि से तो वहाँ अपने पापों का प्रयश्चित्त करने के लिए ही भेजे जाते हैं, इसलिए उनके सम्बन्ध में यह कहना कि उन्हें इसमें सुख मिलता है, सही नहीं। राजनैतिक बन्दी तो जाते ही वहाँ कष्ट भेलने हैं। यह अलग बात है कि कर्तव्य की बलि-वेदी पर खड़े होकर वह उन दुःखों को सुख समझकर अपना लें। कारावास, आखिर कारावास है— और फिर एक परतन्त्र देश का कारावास, जहाँ नैतिक और राजनैतिक बन्धियों में कोई भेद नहीं, जहाँ साधारण बन्धियों की दैनिक खुराक मुश्किल से डेढ़ आना है।

लेकिन मानव में एक गुण है। वह अपने-आपको परिस्थिति के अनुकूल ढालने की सामर्थ्य रखता है। आप उससे सब-कुछ छीन लें, उसे सभी अधिकारों से वंचित कर दें, तो भी आप देखेंगे कि कुछ ही काल में वह फिर उसी तरह रहने लगा है। निश्चय ही आरंभ में वह कुछ कठिनाई अनुभव करेगा, प्रतिबन्धों के विरुद्ध आवाज़ उठायेगा, परन्तु हौले-हौले उसका जीवन, उसी साँचे में ढला, नपे-तुले तरीके से चलने लगेगा। इसीलिए, जहाँ कारावास दुःखों का एक घर है, वहाँ भी बन्दी अपने मनोरंजन और खुशी का साधन खोज लेते हैं। बन्दी का जीवन दिलचस्पी से खाली नहीं। इसमें आपको कई ऐसे व्यक्तियों से मिलने का अवसर प्राप्त होता है, जिनके चरित्र-अध्ययन के लिए आप लालायित हो उठें, ऐसी घटनाएँ होती हैं, जिन पर आप अचम्भा करने लगें, ऐसी बातों का पता चलता है, जो आपने कभी भी सुनी न हों। कुछ ऐसी भी बातें होती हैं, जिन्हें सुनकर आप उस दुःखों के घर में भी खिलखिला उठें। उन्हीं में से कुछ मैं यहाँ लिखता हूँ।

१

मनीराम हरियाना प्रान्त का रहने वाला है। बाईस वर्ष की आयु में एक व्यक्ति को क़त्ल करने के अपराध में उसे बीस वर्ष का दण्ड हुआ। चौदह वर्ष बाद जब वह रिहा हुआ तो उसकी जवानी का ख़ुमार उतर चुका था। रिहा होते ही वह सीधा अपने गाँव गया। खेतों में पहुँचा, वहाँ उसका चचेरा भाई रामदास बैठा था। जाते ही उसे कुल्हाड़ा मारा और वहीं ढेर कर दिया। आस-पास के लोगों ने उसे पकड़कर पुलिस के हवाले कर दिया। मैजिस्ट्रेट ने उसे उम्र क़ैद की सज़ा दे दी। रामदास ने पिछले मुक़दमे में उसके विरुद्ध गवाही दी थी।

कहते हैं, वह घर तक नहीं गया। अपनी पत्नी से नहीं मिला,

जो चौदह वर्ष से उसकी प्रतीक्षा कर रही थी। गाँव का पानी नहीं पिया। केवल अपनी प्रतिहिंसा की ज्वाला को शांत करने के लिए उसने लोहू का एक फव्वारा छोड़ दिया। आज वह फिर जेल में चक्को पीसा करता है।

२

फ़ौजू ज़िला गुजरात का है।

वहाँ के ज़मींदार से उसकी बहुत बनती थी। ज़मींदार भी उसे अपनों-सा समझता था। ज़मींदार के ही कहने पर वह एक बार जाटों के एक दूसरे दल से उलझ गया। लड़ाई हुई। सिर फट गए। एक मर भी गया। फ़ौजू पकड़ा गया और पाँच साल की सज़ा सज़ा हुई। रिहा होकर वह ज़मींदार के पास पहुँचा। उसका स्वास्थ्य बिलकुल गिर गया था। उसने जाकर पूछा—“ज़मींदार साहब कहाँ हैं?” पता लगा, पिछले वर्ष उनकी मृत्यु हो गई। वह ज़मींदार के बेटे के पास गया, बोला—“तुम्हारे बाप के कहने पर मैं लड़ा था। इसीलिए मुझे जेल जाना पड़ा। वहाँ मेरी सेहत बर्बाद हो गई। अब तू मुझे दो सौ रुपया दे, ताकि मैं खा-पीकर तकड़ा हो जाऊँ!” ज़मींदार के बेटे ने आनाकानी की। फ़ौजू ने मिन्नत से कहा—“देख तू मुझे कुछ न दे, सिर्फ मुझे खाने-पीने को दे। मैं तकड़ा हो जाऊँगा तो अपना काम करने लगूँगा। अभी मुझ में काम करने की हिम्मत नहीं।” वह तब भी नहीं माना। फ़ौजू को गुस्सा आ गया, पास पड़ो लाठी उठाकर उसने ज़मींदार के बेटे के सिर में दे मारी। वह चोखा और मर गया। फ़ौजू को चौदह साल की सज़ा हुई

ऐसे व्यक्तियों के सम्बन्ध में आप क्या कहेंगे ?

३

पंजाब-भर में जेलों में फाँसी लगाने का काम एक नियत परिवार करता है। जहाँ कहीं भी फाँसी लगानी होती है, उसी परिवार

का कोई आदमी बुलाया जाता है ! फाँसी लगाना उनका खानदानी काम है । सरकार की ओर से उन्हें वेतन तो मिलता है, इसके अतिरिक्त प्रत्येक फाँसी पर उसे पाँच रुपये मिलते ही हैं । जिस मास जितने अधिक व्यक्ति फाँसी लगें, उसकी आय उतनी ही बढ़ जाती है । वह भगवान् से क्या प्रार्थना करता होगा, यह कोई भी समझ सकता है । एक बार लाहौर-हाईकोर्ट ने एक साथ सात फाँसी वालों को रिहा कर दिया । उस भङ्गी ने सुना तो कहने लगा—“बड़ी बेइन्साफ़ी होने लगी है !”

अपना-अपना धन्धा है !

४

निहङ्ग सिख किसी के हाथ की पकी रोटी नहीं खाते । नल का पानी नहीं पीते । इसलिए जेल में उन्हें अपनी रोटी पकाने और कुएं का पानी प्रयोग करने की विशेष सुविधा दी गई है । सेण्ट्रल जेल में भी कुछ निहङ्ग सिख कैदी थे ; जेलकी ओर से उन्हें ‘डोल’ (बाल्टी) दिया गया, ताकि वह कुएं से अपने लिए पानी निकाल सकें । एक दिन जेल-खाने के अधिकारी से उनकी अनबन हो गई और जब जेल वाले किसी तरह न माने तो उन्होंने शरारत शुरू की । वह अपना ‘डोल’ रोज कुएं में फेंक दिया करते । जमादार बड़ा तंग आया । दारोगा से शिकायत कर दी । दारोगा ने पूछा—“यह क्या होता है, रोज़ ?” उनका ‘जरनैल’ बड़ी गम्भीरता से बोला—“साहब ! डोलासिंह जी शनाना मार जाँदें नें !” (बाल्टी-नहाने चली जाती है !)

अब दारोगा क्या कहता । हँस पड़ा ।

५

यही निहङ्ग कोई चीज किसी से माँगकर नहीं लेते । जेल वालों से इन्होंने अगर अपना ‘राशन’ लेना हो तो कहते हैं—“मालिया उग-रौन चल्ले आँ ।” (भूमि-कर वमूल करने चले हैं ।) एक दिन जब

इन्हें 'गल्ला गोदाम' से पूरा राशन न मिला तो बड़े साहब के पास जा धमके। बोले—“क्यों जी, मालिया घटा क्यों दित्त जे ?” साहब भौंचक्का-सा रह गया—यह मालिया कैसा ! तब उसे एक नम्बरदार ने बताया कि इन्हें राशन कम मिला है। साहब भी हाजेर-जवाब था, बोला—“सरकार आजकल बहुत दयालु हो रही है। लोगों पर ज्यादा बोझ नहीं लादना चाहती !” लेकिन 'जरनल' ने नहले पर दहलार मारा—“लाम दें ज़माने बिच ते मालिया बधाया जाँदा ए, साहब जी !” (जंग के दिनों में तो टैंक्स बढ़ाये जाते हैं, साहब)

साहब ने खुश होकर अधिक राशन दिलावा दिया।

६

मूला बीस-साला कैदी था।

दुबला-पतला सुकड़ी-सा आदमी, सेर-भर हड्डियों के ऊपर पाव भर मौस। ज़ोर से हवा चले तो फूँक से उड़ जाय, लेकिन उसमें एक हुनर था। वह दीवार बहुत आसानी से तोड़ सकता था। उसे आष कोठरी के अन्दर बन्द कर दीजिए, वह थोड़ी ही देर में दीवार में छेद करके बाहर आ जायगा। जेल के सब अधिकारी हैरान थे कि माजरा क्या है। जब उसने पहली बार दीवार छेदी तो तलाशी लेने पर उसके पास से एक कील निकली। कील छीनकर उसे नई कोठरी में बन्द कर दिया गया; लेकिन थोड़ी ही देर बाद दीवार फिर कुरेदी जा रही थी। अब के तलाशी लेने पर उसके पास से एक दातून का छोटा-सा टुकड़ा निकला। तीसरी कोठरी में बन्द करने से पहले जमादारों ने उसकी पूरी तलाशी ली। उसके पास या कोठरी में एक तिनका तक न रहा। तो भी सुबह लोगों ने देखा कि दीवार की एक ईंट निकली हुई है और वह बाकी ईंटें निकाल रहा है। यह सारा काम उसने अपने नाखूनों से किया था।

जेल में जब कभी अधिकारी उसकी बात न मानते तो उसका रौब यही था। कहता—“दीवार तोड़ दूँगा !”

बहुत पहले की बात है ।

एक दारोगा था किसी जेल में । बड़ी-बड़ी मूँछें और चलता तो उन पर ताव देता हुआ । इत्तिफाक ऐसा हुआ कि एक कैदी भी वैसी ही मूँछों वाला आ गया । दारोगा 'पैरेड' पर आया तो उस कैदी की मूँछें देखकर उसे अपमान महसूस हुआ । बोला—“कैदी और दारोगा की मूँछें एक-सी नहीं हो सकतीं । मूँछें नीची करो !” और उसने अपने हाथ से कैदी की मूँछें नीची कर दीं, लेकिन तभी कैदी ने अपनी मूँछें फिर उँची कर लीं । दारोगा उससे चिढ़ गया और उस मुद्दल को चक्कियों में बन्द कर दिया ।

अफसर का दिमाग ही तो है ।

८

एक यूरोपियन दारोगा की कहानी है ।

वह हिंदुस्तानी कम समझता था, पञ्जाबी तो बिलकुल ही नहीं । 'पैरेड' पर आया । कैदियों ने अपने-अपने सवाल किये । करतारा भी सवाल करने वालों में से था, बोला—“साहब ! बीमार रहता हूँ, इसलिए दूध लगवा दीजिये !” करतारा ने यह बात पञ्जाबी में कही । वह समझा नहीं । पास के 'डिप्टी' से पूछा । उसकी करतारी से चिढ़ थी । बोला—“साहब यह अण्डे माँगता है ।” साहब ने चश्मे में से उसकी ओर तरेरा और कहने लगा—“ओह, तुम अण्डा माँगता है । यह हिंदु-स्टान के माफ़िक नहीं ।” और चला गया ।

उस 'डिप्टी' को करतारा क्या कहता ?

९

मुराद की अकड़ को जेल-भर में शोहरत थी ।

एक बार बड़े साहब से उसकी टक्कर हो गई । किसी कैदी की इतनी जुर्रत जेल वाले बर्दाश्त नहीं कर सकते । करें तो निबाह कैसे हो !

साहब ने उसे अनिश्चित समय के लिए चकियों में बन्द कर दिया । उसे रोज अठारह सेर गेहूँ पीसने पड़ते । सातवें दिन साहब 'दौरे' या 'पैरेड' पर आता तो उससे पूछता—“मुराद, कैसा हाल है ?” वह सदा कहता—“बहुत अच्छा है साहब !” छः महीने इसी तरह गुजर गए और मुराद ने एक बार भी साहब से नहीं कहा कि उसे माफ किया जाय या चकियों से निकाल दिया जाय । आखिर, साहब ने एक दिन उससे स्वयं ही कहा—“तुमने एक बार भी हमसे माफी नहीं माँगी । इतना भी नहीं कहा कि मैं ऐसा नहीं करूँगा, लेकिन अब हम तुम्हें और चकियों में नहीं रखना चाहते । जाओ तुम आज से नम्बरदार बन गए ।”

अफसरों की एक किस्म यह भी है ।

१०

एक दूसरे साहब (सुपरिण्टेण्डेन्ट) की बात है ।

वह सख्ती करने में मशहूर था, लेकिन बात वह जचती कहता । कैदियों को 'संतुष्ट' करके ही वह कुछ कहता । एक कैदी आया; उसके दायें हाथ में केवल तीन अँगुलियाँ थीं । सेहत अच्छी होने के कारण उसे चक्री ही पीसने को दी गई । साहब दौरे पर आया तो, उसने कहा—“जनाब ! तीन अँगुलियों से मैं चक्री कैसे चला सकता हूँ । मुझे कोई और मुशक़्त दी जाय ।” साहब ने उसी वक्त अपना कोट उतारा और अन्दर कोठरी में चला गया । अपनी दो अँगुलियाँ एक तरफ हटाकर उसने एक सेर आटा तभी पीस डाला । सब लोग आश्चर्य-चकित से साहब की ओर देखते रह गए । बाहर निकलते हुए साहब बोला—“देखा तीन अँगुलियों से ऐसे चक्री चलाई जाती है ।”

कैदी अब क्या कहता ?

११

सन् तीस-बत्तीस की बात है ।

राजनैतिक कैदियों का एक मुशकती था—सोहणा, सुन्दर तो वह क्या था, नाम ही 'सोहणा' था उसका । उसने गले में रुपये-पैसे छिपाने की जगह बनी रखी । प्रायः सभी नैतिक कैदियों ने बना रखी होती है । नोट चलने से अब तो इनका रिवाज कम हो गया है, लेकिन पहले इन 'खजानों' में हजारों रुपये रहते थे । जेल में वैसे एक पैसा भी नहीं जा सकता, परन्तु यह एक खुला भेद है कि जेल में कैदियों के पास ढेरों रुपये होते हैं, रुपये ही नहीं पौंड भी । सोहणे के पास लगभग पच्चीस रुपये थे । एक यूरोपियन वार्डर ने उससे कहा—“मेरा एक पौंड तोड़ दो !” सोहणा बोला—“लाओ !” और उसने ऋट से तेरह रुपये निकाल लिये । वार्डर ने उसकी हथेली पर पौंड रखते हुए कहा—“यह लो !” तभी सोहणे ने वह पौंड और रुपये फिर निगल लिए और बर्तन साफ करने लगा ।

वह वार्डर बहुत तिलमिलाया । उसने बहुत डांट-डपट बताई, पर वह टस-से-मस नहीं हुआ । बर्तन मलने में ही व्यस्त रहा । वह वार्डर एक बड़े नेता के पास पहुँचा । गिड़गिड़ाकर कहने लगा—“मेरा पौंड दिलवा दो !” उस नेता ने सोहणे से कहा—“भई, दे दो !” वह बोला—“आप चुप रहिये । यह न तो मेरी शिकायत कर सकता है और न मुझसे रुपये ही ले सकता है !”

वह नेता क्या कहता और वार्डर ही क्या करता ?

१२

पुरानी सैन्ट्रल जेल में राजनैतिक बंदियों के नहाने के लिए एक अलग कुआ था । बैल जिस रस्से से बाँधकर पानी खींचते थे, वह रस्सा टूट गया । राजनैतिक बंदियों को ओर से एक दो बार रिपोर्ट की गई । लेकिन नया रस्सा नहीं आया । जेल में यह कोई नई बात नहीं । टाल देना जेल के अधिकारियों के बाँयें हाथ का करतब है ।

कुछ दिन बीत गए ।

साहब (सुपरिंटेंडेंट) दौरे पर आया । एक कांग्रेसी ने कहा, “साहब बहादुर ! दस दिन से रस्सा टूटा हुआ है, पानी निकालने में दिक्कत होती है ।”

सुपरिंटेंडेंट ने डिप्टी सुपरिंटेंडेंट की ओर अफसरी निगाहों से देखा । मतलब था, “आपका यह कैसा प्रबंध है ? रस्सा टूट जाय और आप नया मँगावाय ही नहीं ।”

डिप्टी सुपरिंटेंडेंट ने अपने अधीनस्थ अफसर असिस्टेंट सुपरिंटेंडेंट की ओर तरेरा । उसने निगाहें नीची कर लीं । शर्म की बात थी । फिर अफसर के सामने आँखें कैसे उठाए । लेकिन उसे बुरा लगा । दौरा खत्म हुआ तो वह चीफ वार्डर को बुलाकर बोला, “यह कांग्रेसी हमारा नाक में दम किये ही रहते हैं, लेकिन तुम भी हमें जीने नहीं दोगे । क्या दौरे से पहले एक बार देख नहीं सकते थे कि कोई शिकायत की बात तो नहीं है ? पर, तुम्हें क्या, यहाँ चक्कर में बैठकर कैदियों से अपने सिर में तेल लगावाया करो ।”

चीफ वार्डर और इतनी बात सुने ! उसने उस अहाते के इंचार्ज वार्डर के चक्कर में आते ही उससे कहा, “तुम्हें आदमियों की तरह काम करना है तो करो, नहीं तो नौकरी छोड़ जाओ । तुम्हारी सुस्ती की बजह से भाड़ें हमें पड़ती हैं । कैसे गधों से पाला पड़ा है । जाओ और जाकर नम्बरदार से पता करो, कितना रस्सा चाहिए ।”

वार्डर पलटकर हाते में आया । कुएं का इंचार्ज नम्बरदार भूप में कपड़े सुखा रहा था । जाते ही बोला, “हरामज़ादे ! कैद काटने आता है कि बाप की बारात में जाने की तैयारी करने । कुएं का रस्सा टूट जाय तो तू बैठा यहाँ कपड़े सुखाया कर । कांग्रेसियों के साथ रह-रहकर तेरा दिमाग भी सातवें आसमान पर पहुँच गया है । रस्सा टूट

गया था तो मुझे खबर नहीं की जाती थी ? जा मर । रस्से का पता कर !”

नंबरदार को गुस्सा आ गया । बैल हॉकने वाले मुशकती के पास पहुँचते ही तड़ाक से दो जड़ दीं, “हरामखोर कहीं का । तुझे मजे से दिन काटने मुहाल हो रहे हैं । पन्द्रह दिन चक्की-बंद रहे तो आटे-दाल का भाव मालूम हो जाए ।” दो-तीन मोटी-मोटी गालियाँ और निकालकर बोला, “रस्सा टूट गया था तो मेरे पास आकर मरता । तुझे फाँसी पै लटकाने के लिए भी रस्सा दे देता !” एक और जड़कर वह फिर अपने कपड़ों में उलझ गया ।

मुशकती ने कसकर एक सोंटा बैल को मारा, “मुर्दार ! बिना रस्से के तू पानी नहीं खींच सकता !” और तभी शायद बैल ने भी अपने नाखून से धरती पर चोट की ।

लेकिन—

रस्सा फिर भी नहीं आया !

१३

निरंजन जाट था और करम बलोच ।

सेण्ट्रल जेल राजनैतिक बन्धियों के लिए खाली हुई तो वह दोनों भी जिला जेल में भेज दिये गए । आपस में इनकी पुरानी अनबन थी । चोर डाकुओं में एक बार ठन जाय तो फिर बनतो नहीं । सेण्ट्रल जेल में ही एक बार दोनों तन गए थे । तब की ठनी अब तक बनी न थी ।

निरंजन को पता लगा कि साहब करम को अपना अर्दली बना रहे हैं । किसी कैदी के लिए यह बड़ा पद होता है । निरंजन को बुरा लगा । साहब दौरे पर आया तो निरंजन पंक्ति में खड़ा हो गया ।

बोला, “एक सवाल है साहब !”

साहब ने पूछा, “क्या है ?”

“आप करम को अपना अर्दली न बनाइए !”

एक कैदी की इतनी गुस्ताखी ! साहब चिढ़ गया। हुक्म दिया,
“करम को कल से ही मेरा अर्दली बना दिया जाय !”

साहब आगे बढ़ने लगा। निरंजन ने फिर कहा, “साहब
बहादुर ! उसे अपना अर्दली न बनाइए !”

साहब बहादुर ने अकड़ के साथ घूमकर निरंजन की ओर
घूरा। सब सहम गए। साहब ने पूछा “क्यों ?”

निरंजन ने तन कर कहा, “क्यों कुछ नहीं साहब ! यदि वह
अर्दली बना तो मैं उसका सिर फोड़ दूँगा !”

“हूँ !”

कहकर साहब चला गया। लेकिन चौथे दिन करम का सिर
फट गया। एक पेड़ से मोटी लकड़ी तोड़कर निरंजन ने उसके सिर पर
दे मारी थी !

१४

निरंजन की कहानी और भी है।

निरंजन को पेश किया गया। साहब ने उसे तीस बेंतों की
सजा दी। इस से अधिक सजा वह दे नहीं सकता था।

बेंत पड़ने लगे तो देखने वालों ने आँखें फेर लीं। अदालत सजा दे
तो जेल वाले बेंत हौले-हौले मारते हैं। स्वयं किसी को सजा दें तो चमड़ी
उधेड़ देते हैं। हर बेंत एक झूँच-झूँच शरीर में खुब जाता। दस-
ग्यारह बेंतों के बाद चर्बी फूटने लगी। लोहूँ बहने लगा।

निरंजन ने सी तक नहीं की।

आह नहीं भरी।

तीस बेंत लग चुके तो साहब ने कहा “अब आई होश !”

निरंजन ने कहा, “अभी तीस और खा सकता हूँ !”

तब से अब !

महीनों गुजर गए । साहब बदल गया । करम को भी दूसरी जेल में भेज दिया गया । लेकिन, निरंजन ने एक दिन भी जेल की मुशक़्त नहीं की । वह वहीं का वहीं था । जेल वालों की सब सख्तियाँ हार गईं । निरंजन नहीं हारा ।

दिन-भर वह उस छोटी-सी कोठरी में बन्द रहता । पाँचवें-सातवें दिन यदि कभी जेल वाले उसे बाहर निकालते भी तो न निकलता ।

नया दारोगा सख्ती की बजाय तदबीर से काम लेना पसन्द करता था । निरंजन से कहने लगा, “तू क्यों अपनी कैद खराब करता है । अधिक नहीं थोड़ा ही काम कर लिया कर !”

निरंजन का जवाब बस एक ‘न’ था ।

दारोगा हारने वाला आदमी न था । एक दिन प्यार से बोला, “देख निरंजन, तू एक दिन बस एक दिन काम कर दे । मैं साहब से कइकर तेरी सब गलतियाँ माफ़ करा दूँगा । बस एक दिन दो-चार सेर दाने पीस दे । मैं तुझे नम्बरदार बना दूँगा !”

निरंजन को पता नहीं क्या सूझी । कहा, “दो-चार सेर नहीं, एक मन पीस दूँगा !”

दारोगा ने एक मन गोहूँ ढेर लगवा दी । सूर्य डूबने से पहले निरंजन ने उसका आटा बना दिया ।

अब निरंजन नम्बरदार है !

अंग्रेज़ों ने ‘टिप’ का जो रिवाज चलाया था, वह बढ़कर अब रिश्वत का रूप धार गया है । और रिश्वत की गर्म बाज़ारी देखनी हो तो अंग्रेज़ों का जेल-विभाग देख लें ।

पैसा लिये बिना कोई बात नहीं करता। फिर किसी को नम्बरदार कैसे बना दे। सब-जेल के कर्त्ता-धर्त्ता छोटे साहब ने कसम खाई थी जो बिना रिश्वत लिये किसी को नम्बरदार बना जाय।

कैदियों की भाषा में नम्बरदार बनने का मतलब है—बिल्ला (बैज) मिलना।

किशन को 'बिल्ला' लेना था। दौरे के दिन छोटे साहब आये तो खड़ा हो गया। बोला—“साहब ! बिल्ला चाहिए।”

इतने आदमियों के बीच छोटा साहब रिश्वत कैसे माँगता ? और रिश्वत लिये बिना वह नम्बरदार बनाता कैसे ? बोला—“बिल्ले को पिलाने के लिए दूध है ?”

१७

बिल्ले की कहानी और भी है।

सुलतान नम्बरदार बन गया। उसकी माँ मुलाकात करने आई तो बड़े गर्व के साथ बोला, “माँ मुझे बिल्ला मिल गया।”

माथे पर चिंता की रेखाएं खींचकर वह बोली, “यह क्या बेटा ! आगे ही दो रोटियाँ खाने को मिलती हैं। खुद क्या खाएगा और उसे क्या खिलायगा ?”

१८

‘नम्बरदार’ का भी एक चुटकुला है।

सोहन का बाप गाँव का नम्बरदार था। बाप मरा तो बेटे ने नम्बरदार बनना चाहा, लेकिन चचेरा भाई भी दावेदार था। इसी बात पर दोनों उलझ गए। लड़ाई हुई। सिर फट गए। सोहन को सात साल की सजा हुई। एक तिहाई कैद काट बैठा तो उसे जेल के नियमों अनुसार ‘नम्बरदार’ बना दिया गया। अर्थात् कैदी-वार्डर। उसने घर खत लिखा, “माँ, अब मैं नम्बरदार बन गया हूँ।”

माँ ने लिखवाया—

“शुक्र है, तेरी रीझ पूरी हुई। जो बाहर नहीं बन सका था, वह अन्दर बन गया।”

१६

सरदारा, रलिया और शंकर तीनों एक जेल-बाबू पर टूट पड़े। बात कोई बड़ी न थी। रलिया की मुलाकात पर उसका चाचा बढ़िया गुड़ लाया था। जेल के कायदे से उसे गुड़ मिल नहीं सकता था। लेकिन, जेल-बाबू से रलिया की जान-पहचान बहुत थी। उसे विश्वास था, उसका कहा वह कभी न मोड़ेगा। इसी भरोसे उसने कहा भी, पान्तु, जेल-बाबू ने इजाजत न दी।

रलिया को गुस्सा आ गया। सरदारा और शंकर उसके पक्के साथी थे। सुख-दुःख उन्होंने बाँटा था। रलिया का अपमान उनका अपमान था। शाम को बाबू गिनती करने पहुँचा ही था कि उस पर पिल पड़े। जब तक दूसरे नम्बरदार वार्डर उसकी सहायता को पहुँचे तब तक इन तीनों ने उसका कचूमर निकाल दिया।

साधारण बात होती तो बड़ा साहब तीस-तीस बेंतों की सजा देकर बस करता। लेकिन, इनकी बदमाशियों से वह तंग आया हुआ था। पुलिस को बुलाकर मामला उसके सुपुर्द कर दिया। पुलिस ने बलवे का मुकदमा बना दिया। तीनों को सेंट्रल जेल से जिला जेल में बदल दिया गया।

करनी करतार की। जिला-जेल की ड्योढ़ी में ही दारोगा से उनकी कहा-सुनी हो गई। दरबान ने इनकी तलाशी लेनी चाही। सरदारा बोला, “हमने बड़ी-बड़ी जेलें देखी हैं, पर कभी तलाशी नहीं दी। तू भी हमारी तलाशी न ले।”

दरबान के बहुत कहने पर भी जब वे तलाशी देने को तैयार न

हुए तो उसने दारोगा से रिपोर्ट कर दी । दारोगा ने कहा, 'बिना तलाशी दिये कोई नहीं रह सकता ।' दरबान ने दो-तीन और वार्डरों की सहायता से उनकी तलाशी ली तो तीनों की पगड़ियाँ उतर गईं । सरदारा बोला, "मेरा भी नाम सरदारा है तो दारोगा से बदला लूँगा ।"

बदला तो वह ले नहीं सका, हाँ तीनों ने भूख हड़ताल कर दी । उन्हें अलग-अलग कोठरियों में बन्द कर दिया गया । बेड़ियाँ तो वे पहने ही हुए थे । पन्द्रह दिन बीत गए । उन्होंने न कुछ खाया, न पिया ।

जेल के सब अफसरों ने उन्हें समझाना चाहा, लेकिन वे नहीं माने । उनकी माँग थी कि दारोगा उनसे माफ़ी माँगे । दारोगा भला माफ़ी क्यों माँगने लगा । परन्तु दारोगा की यह इच्छा जरूर थी कि झगड़ा किसी तरह निबट जाय । ऐसे खतरनाक कैदियों से वैसे भी डर बना रहता है । मुझे बुलाकर उसने कहा, "आप इन्हें समझाइये । हमें तो यह अपना दुश्मन मानते हैं ।"

धूमते-फिरते एक दो बार मैं इनसे मिल चुका था । कुछ जान-पहचान-सी हो गई थी । मैंने जाकर सरदारा से कहा, "तुम्हारा जो अपमान हुआ है वह तुम्हारी गलती से । अफसरों को अधिकार है कि वह तुम्हारी तलाशी लें । अब तुम भूख हड़ताल किये हो । इसका लाभ ?"

"आप ठीक कहते हैं, बाबू जी ! हम मर भी जायें तो इनको हमारी खाक परवाह है । लेकिन आप जानिये, सेंट्रल जेल में मैं सबसे बड़ा बदमाश था । अफसर मुझसे डरते थे । अब बिना अपनी बात मनवाये भूख-हड़ताल छोड़ दूँ, तो मुझे बड़ा बदमाश कौन कहेगा ?"

सरदारा की बात सुनकर मैं चुप हो गया । इनके लिए बदमाश होना भी गर्व की बात है !

राजे को छः मास का दण्ड हुआ था ।

बस यों ही भिड़ गया । आपस में मामूली-सी बात पर तकरार हों गई । जेल जाने लगा तो महराँ रोने लगी । प्यार से उसे दिलासा देकर कहने लगा, “पगली ! रोती है । छः महीने क्या बहुत होते हैं । मैं गया कि आया !”

महराँ ने सोचा ब्याह हुए भी तो छः महीने ही गुजरे हैं । कब खबर लगी कि बीत गए । छः महीने क्या बहुत होते हैं ? राजे के लौटने की बाट जोहने लगी ।

लेकिन राजे ने और ही खेल खेला ।

कुछ कम कैद वाले मुशकतियों की जरूरत थी । राजे को ‘दोबारी जेल’ में भेज दिया गया ।

दोबारी जेल उसे कहते हैं, जहाँ दोबारा कैद होने वाले कैदी रखे जाय—अर्थात् आदी—मुजरिम । इन जेलों में नये कैदियों को नहीं रखा जाता कि कहीं वह भी बुरी आदतों को न सीख लें । अधिक आवश्यकता पड़ने पर ही कम कैद वाले कैदियों को इन जेलों में भेजा जाता है ।

राजे की किस्मत उसे यहाँ खींच लाई । दोपहर को कुट्टी के वक्त आपस में गप्पें हाँक रहे थे कि एक ने बात मारी, “देख रे ! यह राजे भी कैद होकर आया है । छः महीने कैद ! उँह !”

दूसरा बोला, “इतने दिनों में तो तसला-बाटी माँजना सीखेगा ।”

और बदमाशों के सरदार ने कहा, “चल परे हटके बैठ ।”
राजे को बात लगी ।

अगले रोज उसने तसले का किनारा तेज किया और जेल-बाबू को नशक काट ली। मुकद्दमा चला। राजे को सात साल की सजा हुई। जेड़ियाँ खनखनाता अब वह बैरकों के चक्र लगाते लगा। मूँछों पर ताव देता, “अब तो हुई न सजा मुझे। अब तो तसला-बाटो मँजना सीपूँगा।”

कैदियों में उसका आनंद छा गया। बदमाशों में उसकी इज्जत बढ़ गई। जेल वाले उससे डरने लगे।

यह तो हुआ। पर एक रात राजे को गेहर्गो याद आ गई। मैं उससे छः महीने में लौटने का वायदा करके आया हूँ। अब सात वर्ष कैसे करेंगे? मन ने जोर मारा मरनसिक संतुलन खो बैठा। अगली रात उसने जेल से भागने की कोशिश की, लेकिन पकड़ा गया।

सजा और बढ़ गई।

अब उसे जीवन का मोह नहीं रहा था। जेल में बदमाशों के एक दल का वह नेता था। एक बार दोनों दलों में लड़ाई हो गई। जेल में अलार्म हो गया लाठियाँ चलीं। राजे ने अपने प्रतिद्वन्द्वी को मार दिया।

फिर मुकद्दमा चला।

राजे को फाँसी की सजा हो गई। कुछ महीनों के बाद उसे फाँसी पर लटका दिया गया।

महराँ अब भी उसकी बात जोहती है।

×

×

×

यह हैं कारावास की कहानियाँ। शायद आप इनसे सलाखों के पीछे बसे उस संसार का एक धुँधला-सा चित्र खींच सकें। मैंने ऐसी ही घटनाओं को आधार मानकर इन कहानियों की कल्पना की है। एक ऐसे

ही वातावरण में बैठकर, जहाँ अपना-पराया कोई नहीं होता, दिल के इन भावों को मैंने कलम की नोक से कागज पर बहा दिया है। इन्हें पढ़कर यदि आप एक बन्दी के जीवन की तनिक-सी भी अनुभूति पा सकें, उसके प्रति थोड़ी-सी सहानुभूति दरसा सकें तो मैं अपने हृस प्रयास को सफल समझूँगा।

‘यश’

कारावास

“.....”

बीबी ! बैठ जाओ न यहीं । जेल में वे घर जैसे आराम तो नहीं हैं, लेकिन दिल के बहलाने को इस टाट को ही गद्दा समझ लेना चाहिए, और फिर हमारे पास तो इसके सिवा और कोई चारा भी नहीं है । हमें तो यहाँ बीस बरस काटने हैं ।

मालूम होता है, तुम अभी पहली बार ही और नई-नई आई हो; नहीं तो तुम मुझसे ऐसे न पूछतीं—‘तुम कब गिरफ्तार हुई थीं ?’ ‘कितनी सजा हुई ?’ ‘किस जुर्म में ?’ ऐसे प्रश्न नये कैदी ही पूछा करते हैं ।

अरी बीबी ! तुम इतना सकुचा क्यों रही हो । तुम्हें भी तो यहाँ डेढ़ बरस काटना है । और फिर तुम्हें शर्म काहे की, तुम तो देश की सेवा में आई हो न—आओ, जरा खुलकर बैठो न !

मुझे तुम्हारा नाम बहुत पसन्द है—नलिनी, हमारे बक्त में तो ऐसे ही नाम रख देते थे । बुधवार के दिन पैदा हो गई तो बुधिया । मंगल के दिन हुई तो मंगली । और इसी तरह रक्खी, दुलिया । अब तो बड़े अच्छे-अच्छे नाम रखने लगे हैं लोग । जमाना ही बदल रहा है ।

मैंने सुना है, तुम बहुत अच्छा बोल लेती हो । हजारों लोगों के बीच तुम घण्टों बोलती हो । लेकिन यहाँ तो तुम बात भी नहीं करती । बोलती भी हो तो बहुत झिझक के साथ । देखो नलिनी बीबी ! यहाँ एक नये परिवार में रहना होता है । उसीके साथ हिलना-मिलना सीखो ।

यहाँ सभी तरह की औरतें हैं। पञ्जाब-भर में औरतों के लिए यही एक जेलखाना होने के कारण सभी जगह की औरतें यहाँ आती हैं। इनमें कुछ वह होती हैं, जो बेचारी निरपराध ही पकड़ी जाती हैं, उन पर मुझे तरस आता है। इसके विपरीत कुछ ऐसी हैं ? जो बाहर रह सकती हैं, लेकिन जान-बूझकर जेल के इन सीखचों को चूमती हैं—तुम्हारी तरह। ऐसी स्त्रियों पर श्रद्धा होती है। और नालिनी बीबी ! कुछ ऐसी भी होती हैं, जिनकी बातें सुनकर रोयें खड़े हो जाते हैं। तुम यह सुनकर शायद काँप उठोगी कि तुम्हारे सामने बैठो हुई यह नरगी भी उन्हीं तरह की औरतों में से एक है।

चौको नहीं, अब नरगी वह नहीं है। यह तब की बात है, जब लोग मुझे नरगी नहीं नरगिस कहा करते थे। अब—अब तो कुछ भी नहीं, नलिनी ! तब इन आँखों में शराब के दो प्याले छलका करते थे। मेरे इन गाला को लाली मुख सेव का भी लजा देती थी। इन आँठों से, जो आज सूख कर कले हा गए हैं, तब रस टपका करता था। चेहरे पर हुस्न अठखलियाँ करता था। यह तब की बात है नलिनी ! जब आज की नरगी कल की नरगिस के नाम से रूप का व्यापार करती थी। हाँ, तब—जब कभी आँखों की तराजू पर हुस्न का मोल-तोला होता था। आँठों के कम्पन के साथ जयानी का सौदा होता था। तब नरगिस शहर की शोभा थी, इस जेल की एक बोसीदा कैदी नहीं। •

नलिनी बीबी ! तब तो दुनिया ही और थी।

वेश्याओं का जीवन आम तौर पर बहुत कष्टमय होता है, कभी रुपए की तङ्गी, कभी किसी की बुरी आदत का शिकवा, लेकिन मुझे कोई ऐसा कष्ट न था। मेरी दुकान चली हुई थी। मेरे

टाट से शायद शहजादियाँ भी टक्कर न ले सकती थीं। धन-दौलत, साज-सजावट, वैभव-ऐश्वर्य सब-कुछ था मेरे पास। इन सबसे ऊपर मेरी 'क्रूर' और 'शोहरत' थी !

चाहती तो इसी तरह जीवन के दिन काट सकती थी। बुढ़ापे में चाहे बैंक के व्याज पर गुजारा करना पड़ता, लेकिन जवानी के दिनों में मुझे रुपये और पानी में अंतर देखने की जरूरत न पड़ती। परन्तु अपने पेशे के उसूलों के विपरीत मैंने एक से दिल लगा लिया। जैसे घर की औरत बहुतों से मेल-जोल बढ़ाकर अपने नारीत्वरूपी धन को लुटा देती है, इसी तरह बाजारी औरत एक से दिल लगाकर अपना सब रुपया-पैसा खो बैठती है। हजार सुखों की स्वामिनी होते हुए भी नरगिस इस बात का अपवाद न बन सकी। एक से दिल लगाने का मतलब था, मेरे जीवन-सागर में जो पैसे की अनेक नादियाँ आकर गिर रही थीं, उन सबका वन्द करके केवल एक छोटा-सा भरना खुला रखूँ।

अस्लम मेरी आँखों में रम जरूर गया था। लेकिन यदि मैं यह कहूँ कि मुझे उससे रुपए की आस न थी, तो गलत कहूँगी। अपने पेशे के अनुसार तो शायद मुझे यही कहना चाहिए, लेकिन नालिनी बीबी ! अब क्या रखा है इन बातों में। अस्लम सामने होता तो, संभव था, स्वभाव से विवश होकर ऐसी बात कह डालती, लेकिन आज---आज न तो अस्लम है और न नरगिस। अस्लम जानै किस पागलखाने में अपना सिर फोड़ता होगा और नरगिस नरगी बनकर जेल की इन आड़ों-टेढ़ी सलाखों के साथ अपनी कैद के दिना गिना करती है।

पिछले सुख की बातें हैं न, अतीत के वैभव की याद है न बीबी ! इसलिए आवाज कुछ भारी-सी हो गई है। तुम बुरा न

मानना ऐसा हो ही जाता है। आदमी को घर के कुत्ते से भी बिछुड़ने का अफसोस होता है, फिर मैं तो अस्लम को अपना दिल सौंप चुकी थी। दो मिले दिल यदि अलग-अलग हो जायें तो यह आँसू अपने आप ही टपक पड़ते हैं, मुँह से अनजाने ही आँहें निकल पड़ती हैं।

दिल की तस्कीन के लिए समाज ने 'किस्मत के लेखे' का खिलौना बना रखा है। जब वास्तविक चीज टूट जाती है तो यह खिलौना लाकर सामने रख देते हैं। आदमी का मन होता है भोला, संसार के छल-कपट से परिचित होते हुए भी वह धोखे में आ जाता है और असली चीज को भूलकर खिलौने से ही मन बहलाने लगता है। सम्भव था, दुनिया-भर को अपने छल से छलने वाली नरगिस भी इस खिलौने में दिल की दुनिया का आभास पा लेती। लेकिन यहाँ किस्मत के लेखे का रोना नहीं था। मैंने तो अपने पाँव पर आप कुल्हाड़ा चलाया था, अपने हरे-भरे उपवन की एकाएक मदभरी नूतन कली को मैंने अपने ही हाथों से तोड़-तोड़कर एड़ी से मसल डाला था।

अस्लम पहले रोज अपने एक मित्र के साथ मेरे यहाँ आया था। उसका मित्र तो लगभग रोज ही मेरे पास आता था। था तो वह पैसे वाला, लेकिन कुछ इतनी ओछी तबीयत का कि वह मुझे एक आँख न भाता। लेकिन उसके पास पैसा था और मेरे जैसी एक स्त्री के लिए इससे अधिक आकर्षण और किसी वस्तु में हो नहीं सकता था। हाँ, अस्लम उस दिन जैसे घबरा रहा था। भास होता था, इस कूचे में पाँव रखकर वह अपने-आप पर लज्जित है। लेकिन तो भी मेरी आँखों से उसकी वह उत्सुकता छिप नहीं सकी, जो पुकार-पुकार कर कह रही थी—“तू कलाकार है, यह सौंदर्य की प्रतिमा,—फिर संकोच क्यों?” लेकिन, नयापन कुछ

स्वाभाविक भिन्नक उसे रोक-रोक कर कह रही थी—“तू कुलीन कर्मठ, यह नारकीय नारी ! तेरा इसका मेल-जोल कैसा ?”

लेकिन अंत में पहले विचार ने दूसरे विचार पर विजय पाई। संकोच निर्लज्जता के सामने हार गया। पहले वह अपने मित्र के साथ ही आया करता था, अब अकेला भी आने लगा। और मैं जैसे हर बार उसके निकटतर चली जा रही थी। प्रायः मैं अपने दिल में सोचा करती—मुझमें यह नया परिवर्तन कैसा आ रहा है, मेरे दिल में ऐसे विचार क्यों पनप रहे हैं। मुझे अपनी हमपेशा उन औरतों की घटनाएं भूली न थीं, जो इसी बीमारी में फँसकर अपना सर्वस्व खो बैठी थीं। मैं सब-कुछ समझ रही थी, लेकिन फिर भी इससे बच न सकी। अस्लम से लगाव का चाव कुछ इतना बढ़ा कि मुझे किसी और चीज से लगाव ही न रहा।

अस्लम कोई बहुत मालदार आदमी न था। तो भी खासा पैसे वाला था। उसकी जेब मैंने कभी खाली नहीं देखी। दिल का दिलेर और स्वभाव का सखी था। जब से उसका मेरे यहाँ आना-जाना हुआ था, कभी मैंने उसे उदास या मलिन मुख नहीं देखा। सदा खुश-खुश आता और हँसता-खेलता चला जाता। उसके इस स्वभाव ने मुझे इतना मोह लिया कि मैं अपने भ्रष्ट पेशे से ऊबने-सी लगी और सच ही मैंने लगभग उसे छोड़ ही तो दिया। अस्लम भी कुछ मेरे इतना निकट आ गया था कि अब उसे मुझसे अलग रहना गँवारा न था। सौ हीले-वहानों से भी अपने काम से फुर्सत निकालकर वह मेरे पास आ बैठता।

दिन बीत रहे थे और रातें भी !

इन्हीं दिनों अस्लम के चेहरे पर मैंने घबराहट देखी। मेरा उसका परिचय हुए लगभग डेढ़ वर्ष हो चुका था और इस

काल में मैंने उसे काफ़ी निकट से परखा था, लेकिन इतना परेशान मैंने उसे कभी नहीं पाया । मैंने कई बार उससे इसका कारण पूछने की चेष्टा की, लेकिन हर बार उसने 'हाँ-हूँ' करके टाल दिया । लाख जतन करने पर भी उसकी वह व्याकुलता मेरी इन चञ्चल निगाहों से छिप नहीं सका । जुवान तो आदमी के भेदों पर पर्दा डाल देती है, पर आँखें पलक उठते ही जैसे दिल का सारा भेद उँडेल देती हैं । मैंने उसकी आँखों में देखा—उनमें कई दिनों की नोद जाग रही थी । मैंने एक दिन उसकी बाँह पकड़ ली और जोर देकर पूछा—“बताओ क्या बात है ?”

“कुछ नहीं, कुछ ऐसे ही जरा सिर में दर्द-सा रहता है ।”

मैं तन कर बैठी थी । इन विखरे शब्दों ने पुकार-पुकार कर कहा—“बात और है !” और मैंने जरा नाराज़-सी होंकर कहा—“देने को तो दिल तक दे डालते हो, लेकिन बताने को जरा-सी बात भी नहीं बताते !”

नर्लिनी बीबी ! सच कहती हूँ, उस समय उनका चेहरा देखकर मेरा अपना दिल रो उठा था । मेरी आँखों की कोर में पानी भी चमकने लगा था । मैंने उन्हें किसी वहाँ से पोंछ डाला । मुझे भय था, कहीं मेरे आँसू उनके कष्ट को और न बढ़ा दें, परंतु आँखें अपने दिल की वेदना छिपा नहीं सकती । अग्लम भी इस बात को भांप गया । बोला—“नरगिस ! बहुत दिनों से मैं जिस बात को छिपाने की चेष्टा कर रहा हूँ, वह तुम्हें आज बतानी ही पड़ेगी । कई बार मैंने तुम्हें बताने का विचार किया, किंतु इतनी ज़ुरत बटोर ही न पाया । यदि तुम बुरा न मानो तो कहूँ !”

मैं बात सुनने के लिए उतावली-सी हो रही थी । इसलिए कह दिया—“जिस बात को तुम बुरा नहीं मानते, उसे मैं कैसे मान सकती हूँ !”

कहने को तो मैंने कह दिया, लेकिन जब उसने कहा—“नरगिस मेरी बीबी बीमार है।” तो मुझे ऐसा लगा मानो मेरे ऊपर भारी वज्र गिरा हो।” मुझे कभी इस बात का आभास भी न हुआ था कि अस्लम व्याधा हुआ है। उसकी आदतें देखकर—उसकी दरिया-दिली देखकर मैं उसे अभी कांरा ही समझे थी। गृहस्थों के उसमें कोई लच्छन ही न थे। आज एकाएक उसकी पत्नी की बीमारी की बात सुनकर मेरे मन में दंर से सोया हुआ रश्क जाग उठा। एक बार तो जी में आया कि इस दगावाज से अलग हो जाऊँ, लेकिन मैं उसके इतना निकट आ चुकी थी कि पीछे हटना असम्भव था। उससे सम्बन्ध तोड़ने के विचार-मात्र से मैं सिहर उठी। मैंने अनुभव किया उसका बाहु-पाश मुझे अच्छी तरह जकड़ चुका है। मुझे इससे मुक्ति की राह न दिखी। जी में उसपर थोड़ा गुस्सा भी आया, पर मैंने अपने को संभाला। मैंने निश्चय किया, चाहे कुछ भी हो, मैं अब अस्लम से अलग न रहूँगी। मुझे चाहे इसकी दासी ही बनकर क्यों न रहना पड़े।

अपने सारे मनोभावों को छिपाते हुए मैंने कहा—“कब से ? तुमने मेरे साथ जिक्र तक नहीं किया ?”

और वह भारी-स्वर में बोला—“आज एक महीना हो गया है। डॉक्टरों के पाय जा-जाकर थक गया हूँ। एक सप्ताह से सोया तक नहीं।” इतना कहते-कहते उसका गला भर आया।

मैंने कहा—“छिः, तुम तो बहुत दिलेर हो। वह ठीक हो जायगी !”

वह बोला—“नहीं नरगिस ! सभी डॉक्टरों ने जवाब दे दिया है। मुझे उसके मरने का गम नहीं। मुझे दुःख है तो इस बात का कि मैंने उसकी कद्र नहीं की। पिछले डेढ़ वरस से तो जैसे उसे भूल ही गया था। उसकी इस बीमारी में मैं उसे बहुत निकट से देख पाया हूँ !”

उसकी यह बातें सुनकर मेरे दिल में उसके लिए दया उपजी। तभी मैंने समझा कि क्यों वह पिछले दिनों इतना परेशान-सा रहता था। पहले वह रोज आता था। अब कई-कई दिन लापता भी रहता था। मैं उसकी हालत अच्छी तरह भाँप गई।

मनुष्य का मन होता है चंचल। कहीं एक जगह टिक ही नहीं सकता। जैसे लहरों वाले दरिया में किशती एक-सी नहीं तिर सकती, इसी तरह मानव का मन डावाँडोल रहता है। इसका कारण है मानव की किंकर्त्तव्यविमूढ़ता। वह कभी एक निश्चय कर ही नहीं पाता। जिधर वहाव देखता है, उधर ही जैसे वह-सा जाता है। साधारण मनुष्य डटकर खड़ा होना जानते ही नहीं। यह उनकी सबसे बड़ी कमजोरी है। पग तो सोच-विचार के ही उठाना चाहिए, लेकिन सोच-विचार में ही जीवन बीत जाय तो—लानत है ऐसे विचार पर। अस्लम भी इसी बीमारी का शिकार था। एक ओर उसके दिल में पत्नी की वफादारी जाग उठी थी और दूसरी ओर था मेरा आकर्षण! उसकी पत्नी कोई कुरुपा न थी। तो भी आदमी के सीने में दिल ही तो है—जिस पर रीझ जाय, रीझ जाय।

अस्लम दुविधा में फँसा था। वह हम दोनों में से एक को भी छोड़ना नहीं चाहता था। और आज उसे पछतावा था, अपने उस व्यवहार के लिए, जो पिछले दिनों वह अपनी पत्नी के साथ करता रहा।

हम दोनों एक ही नौका पर सवार थे। इसलिए यह सम्भव नहीं था कि किशती डगमगाये और हम दोनों में से एक ही हिले। मैं भी दुविधा में फँस गई थी। लेकिन मैंने जल्दी ही निश्चय कर लिया कि मैं अस्लम के साथ ही रहूँगी, परन्तु मेरे दिल में डाढ़ जरूर थी।

उसने कहा था—सब डॉक्टरों ने जवाब दे दिया है। मुझे इससे कुछ तस्कीन मिली। मैंने सोचा, दो चार दिन की मेहमान है। आप ही चली जायगी। इसके साथ ही मेरे दिल में पाप भी समाया। मैंने उससे कहा—मैं तुम्हारी पत्नी की सेवा करूँगा ! और दिल में सोचा, मर तो वह रही है, तू इस पर अपना प्रभाव जमा ले।

उसने मेरो बान सुनी तो थोड़ा मुसकरा कर फिर उदास हो गया। मैं समझ गई, इस बात की तो उसे खुशी थी कि मुसीबत में हाथ बटाने वाला कोई होगा, लेकिन उस डर था कि कहीं उसकी पत्नी को पता न लग जाय। तभी मैंने कहा—“अस्लम ! तुम फिक्र न करो। उसे पता भी न लग सकेगा कि मेरा-तुम्हारा सम्बन्ध क्या है। मैं वहाँ एक दासी बन कर रहूँगी।”

अस्लम तो जैसे खिल उठा। उसके मुर्झाए चेहरे पर मुस्कान की रेखा खिंच गई। वह भावावेश में बढ़ा और उसने मुझे निकटतर खींच लिया। उस दिन के वे क्षण मैं कभी न भूलूँगी। हम दोनों ही खुश थे। अस्लम इसलिए कि उसे ग़म का साझीदार मिला। मैं इसलिए कि अब दिन-भर अस्लम के पास रहूँगी, लेकिन हम दोनों ने ही नहीं देखा—हमारी उस मधुर मुस्कान के पीछे रौरवमय क्रंदन छिपा था। जिस कल्पित फूल को देखकर हम खुश हुए थे, उसकी एक-एक पंखुड़ी पर यौवन की भाषा में बुढ़ापा लिखा था, कण-कण में जीवन के शब्दों में मौत लिखी थी, रेशे-रेशे पर अमृत की लिपि में गरल लिखा था !

बैठे-बैठे तुम थक तो नहीं गईं नलिनी बीबी ! मैं अपने विचारों में कुछ इतना खो गई थी कि मुझे तुम्हारा ध्यान तक न रहा। तुमने मुझे इतने प्यार से पुकारा कि मैं अनजाने ही अपने दिल का लेखा तुम्हारे सामने खोल बैठी। एक दुखी की दास्तान

है यह--एक पापी की प्रायश्चित्त-कथा। यदि तुम सुनती-सुनती ऊब न गई हो तो अपने इस पतित जीवन की इस निकृष्ट-कहानी को जारी रखूँ ?

तो हाँ, नलिनी बीबी ! अस्लम मुझे अपने घर ले गया। अपनी पत्नी से बोला—“सल्मा ! तुम दिन-भर उदास-उदास पड़ी रहती हो, तो अब तुम्हारे लिए एक साथिन ले आया हूँ। यह बहुत अच्छी औरत है.....!”

तभी मैंने उनकी गलती को भाँते हुए कहा—“अच्छी क्या हूँ, बन्दी तो पैसे की लौंडी है। आपने दिया, आपकी खिदमत कर दी। क्या करें, हम गरीबों का गुजारा जो नहीं चलता, लेकिन मैं कोशिश करूँगी कि बकादार लौंडी बनकर आका का नमक हलाल कर सकूँ !”

अस्लम मेरी बात सुनकर दिल-ही-दिल में मुसकराया। उसी दिन से पूरी तन्मयता के साथ मैंने उसकी सेवा करना शुरू कर दी। एक दिन एक डॉक्टर आया और बोला—“मिस्टर अस्लम ! आपकी बेगम साह्य की अंतड़ियों में राग हा गया है !” और उसने कुछ इस तरह का भाव प्रदर्शित किया कि मुझे सल्मा की मौत सामने नज़र आने लगी। मैं दिल में इस बात पर खुश हुई—चलो यह बला भी टली, लेकिन इस अवसर का मैंने बहुत अच्छी तरह उपयोग किया। मैं उसकी सच्चे दिल से सेवा करने लगी। मुझे इस बात का तो विश्वास हो गया था कि वह बचेगी नहीं; इसलिए अस्लम पर अपना प्रेम दर्शाने के लिए मैंने उसकी जी-जान से सेवा की।

लेकिन पाँसा उलटा पड़ा।

मेरी देख-भाल से, मेरे साथ से और अस्लम के मेरे कारण सदा उसके पास रहने से उसकी तबीयत बहलने लगी और

कोई पन्द्रह-बीस रोज़ बाद जब वही डॉक्टर फिर आया तो कहने लगा—“सल्मा ने तो बहुत-कुछ तरकी की है इन दिनों में, मिस्टर अस्लम ! यह सच ही आश्चर्यजनक है ! अगर इसी रफ़्तार से इन्होंने तरकी की तो महीने-भर में बिल्कुल चंगो-भली हो जायंगी ।”

अस्लम के चेहरे पर तो लालिमा दौड़ गई; लेकिन मेरे मन के पाप और दुर्बलता ने मुझे यह अनुभव करने पर विवश कर दिया कि मेरा बना-बनाया खेल बिगड़ने को है। मेरा वह हरा-भरा उपवन उजड़ जाने को है। जी में आया, सल्मा को दवाई में जहर दे दूँ।

तभी डॉक्टर ने कहा—“आप बड़े भाग्यशाली हैं, मिस्टर अस्लम ! लेकिन एक बात का ध्यान रखियेगा, कि इनके दिल या दिमाग को कोई ठेस न पहुँचने पाय ।”

“आप फ़िक्र न करें डॉक्टर साहब, मैं दिन-भर इन्हीं के पास रहता हूँ और हर वक्त इनका दिल बहलाए रखने की कोशिश करता हूँ। खुदा का शुक्र है !” अस्लम ने कृतज्ञता भरे शब्दों में कहा।

डॉक्टर आया था। नवज देखी, स्टेथिस्कोप से छाती का मुआइना किया। कुछ बातें कीं। पुरानी दवाई जारों रखने को कहा। कुछ ‘न-न’ करके फ़ोस जेब के हवाले की ओर चला गया। लेकिन मुझे ऐसा लगा—डॉक्टर नहीं, मेरी खुशी और आनंद का कातिल आया। उसने मेरी आँखों में छिपी खुशी को ताड़ा। अपने नुकीले भाते से उसकी छाती को छेद डाला। दर्द कहीं मिट न जाय, इसलिए घाव पर नमक छिड़कने का नुस्खा बता गया। अपने अपराध को स्वीकार करने में ‘न-न’ करते हुए भी दिल में

उसने अपना जुर्म माना और चला गया। मानो किसी ने मेरी हरकतों को मेरे ही सामने एक-एक करके मसल डाला हो। मैं तड़प उठी।

उस नारकीय पेशे को तो मैं लगभग छोड़ ही चुकी थी। मेरा विचार था कि अब सुखी जीवन बिताऊँगी और दुनिया में दुनियादारों की तरह रहूँगी। आज यह बात सुनकर मुझे अपना सुखद स्वप्न टूटता दोखा। लेकिन मेरी जैसी औरतों के स्वप्न तोड़ने सरल काम नहीं। मेरे दिल को बुरा लगा था—इसलिए मेरे दिल में डाह और जलन की आग जल उठी। मेरे मस्तिष्क में एक पैशाचिक प्रतिहिंसा प्रबल हो उठी। मैंने निश्चय किया—सल्मा को बचना नहीं चाहिए। एक म्यान में दो तलवारें रह ही नहीं सकतीं। मैंने यह भी सोचा कि मैं यहाँ से चली ही जाऊँ; लेकिन यह संभव न था। इसलिए यह जरूरी था कि सल्मा हो इस म्यान से दूर हो जाय और इसका तरीका सिवा मौत के और कोई नहीं था।

नलिनी बीवी ! एक वेश्या क्या कुछ कर सकती है, इसका शायद साधारण लोग अनुमान नहीं कर सकते। अपने हाथ आई चीज़ को हम कभी छोड़ा नहीं करतीं। फिर अस्लम जैसे हीरे को मैं कैसे छोड़ सकती थी। मैंने अपना पेशा त्याग दिया था, लेकिन घुट्टी से जिस मनोवृत्ति को मैंने पाया था, उसे त्याग नहीं सकी। वही मनोवृत्ति राक्षसी रूप धार कर मेरे अङ्ग-अङ्ग पर शासन कर रही थी। और इसी के प्रभाव में नरगिस नाम की कोमलाङ्गी सुन्दरी ने एक इतना भीषण काम किया कि आज उसे सुनकर कोई भी उससे नफरत करने लगेगा।

मैंने सल्मा की हत्या कर डाली, नलिनी बीवी !

उसके सीने में मैंने चमकती हुई छुरी नहीं, घोंपी, उसकी खोपड़ी में मैंने पिस्तौल नहीं दारी, किसी मजबूत रस्सी से मैंने उसका गला नहीं घोंटा, दवाई में मिला कर मैंने उसे जहर भी नहीं पिलाया, लेकिन तो भी मैंने उसकी हत्या कर दी। अस्लम जिस सल्मा को बचाना चाहता था, नरगिस ने उसी को खत्म कर डाला।

मेरा गाना सुनकर अस्लम ने एक बार कहा था—
“नरगिस ! तुम्हारा मधुर कोयल समान स्वर किसी भी प्राणी को क़त्ल कर सकता है।” और डॉक्टर ने कहा था—“बेगम दिल या दिमाग़ को कोई ठेस नहीं पहुँचनी चाहिए।”

मैंने इन्हीं दो चीज़ों का शिकंजा बनाया और सल्मा को इसमें कस्कर पीस डाला। शिकंजे के दोनों हथों को जब मैंने कसना शुरू किया तो सल्मा समझी, यह मेरा दुखता बदन दबा रही है—लेकिन हौले-हौले मैंने उसे इतना कसा कि बदन का दर्द रहा, न बदन !

जब मैंने अपनी दुनिया उजड़ती देखी तो एक दिन—अस्लम की अनुपस्थिति में मैंने उससे यह भेद कह डाला, जिसे सुन कर वह उसी तरह तड़प उठी, जिस तरह मैं अस्लम की बीबी की बात सुनकर तड़प उठी थी। सल्मा की तबीयत बहुत अच्छी थी। कई दिनों के बाद वह उठकर बैठी थी। चारपाई से उतरकर वह दो-चार कदम चली भी। मेरे कन्धे पर हाथ रख कर बहुत हौले-हौले चल रही थी वह। मेरी ओर देखकर और मेरी छाती को दबाती हुई वह बोली—“नरगिस ! तुम्हारा नाम भी बहुत हसीन है, तुम खुद भी बहुत हसीन हो, इन जवानी के दिनों में क्या तुम अपने को अकेली-अकेली महसूस नहीं करती ?”

मैंने कहा—“लौंडियों की जवानी क्या और बुढ़ापा क्या ? लेकिन...!” तभी मैं अनजाने ही रुक गई। सल्माने इधर अधिक ध्यान नहीं दिया। उसने कहा—“नरगिस ! हमारे मियाँ को देखती हो। पिछले दिनों यह ज़रा मुझसे दूर-दूर रहने लगे थे, तो मेरा जी चाहता था अपना गला घोट लूँ। लेकिन अब देखती हो न इन्हें, दिन-भर मेरे पास ही रहते हैं। यदि यह इस तरह मेरे पास न रहते तो क्या सम्भव था कि मैं इस रोग से बच सकतो ?”

मैंने कहा—“बेगम साहबा ! आप थक गई होंगी, बैठ जाइये। ज्यादा चलना अच्छा नहीं !”

तुम फिक्र नहीं करो नरगिस ! आज मेरी तबीयत बहुत अच्छी है। मैं आज बेहद खुश हूँ और फिर देखो न मेरी ओर—अब तो मैं बीमार नहीं रही—भली-चंगी हो गई हूँ। यह मेरे प्यारे मियाँ की बदौलत है।”

सल्माने अभी इतना कहा था कि मैंने अपनी जुवान से पहला बाण चलाया। “बेगम ! यह सब दिग्वाबा है। हाथी के दाँत खाने के और—और दिखाने के और होते हैं !”

सल्मा तड़प-सी उठी। चलती-चलती वह रुक गई। गुस्से से भरी लाल-लाल आँखों से मेरी ओर देखती हुई बोली—“क्या कहा तुमने, मेरे मियाँ तो ऐसे नहीं ?”

“बेगम ! तुम गलती करती हो। वह जो सारा दिन यहाँ बैठे रहते हैं, वह तुम्हारे लिए नहीं बल्कि मेरे लिए !” इस बाण का घाव कहीं गहरा था। सल्मा खड़ी नहीं रह सकी। बोली—“मुझे चारपाई के पास ले चलो...चारपाई के पास !”

मैंने उसे और सहारा दिया और चारपाई पर लिटा दिया। वह हाँफती हुई बोली—“सच कहती हो नरगिस ! ईमान से कहना, झूठ न बोलना, मेरी जिंदगी और मौत का सवाल है।”

हसीन नाम वाली हसीन नरगिस उस वक्त राक्षसी बनी बैठी थी । मैंने नथुने फुलाकर कहा—“मैंने गलत नहीं कहा बेगम !”

और यह आखिरी वाण था । इसकी चोट वह सह नहीं सकी । उसी रात उसे फिर बुखार आया । प्रातः डाक्टर ने देखा तो कहने लगा—“रिलेप्स हो गया है ! रोग और भी भीषण हो गया है, लेकिन अचम्भे की बात है कि तबीयत इतनी सुधर जान के बाद फिर हमला हुआ है !”

रोज जब डॉक्टर आता तो सल्मा बड़ी उत्सुकता से डाक्टर की ओर देखा करती थी, इसका कारण बताते हुए उसने कहा था—“पहले मैंने जीवन का मोह त्याग दिया था; अब मियाँ के प्यार ने मेरी आशा के बुझते दीपक में तेल डाल दिया है । मैं अब जीना चाहती हूँ, नरगिस !” इतना ही नहीं, उसके कान यह शब्द सुनने को उतावले से रड़ते—“सल्मा, तुम अच्छी हो जाओगी ! अब तुम्हें कोई खतरा नहीं !” लेकिन आज जैसे उसे डाक्टर की परवाह ही न थी । उसने एक बार आँख उठाकर डाक्टर की ओर देखा तक नहीं । उसी तरह चुपचाप, वेदना की प्रतिमूर्ति बनी लेटी रही । उसने करबट तक नहीं बदली ।

तभी डाक्टर और अस्लम दोनों बाहर चले गए—डाक्टर अपने धन्धे पर और वह दवाई लाने के लिए । उन दोनों के पाँव की चाप जब सुनाई देने बन्द हो गई तो सल्मा ने मुझे बुलाया—“नरगिस बहन ! मेरे पास आओ !” मैं चारपाई के पास ही एक स्टूल-से पर बैठ गई । वह बोली—“यहाँ नहीं, मेरी बहन ! यहाँ” और उसने मुझे अपने पास ही बिठा लिया । उसने मेरे हाथ अपने हाथों में थाम लिए और अपने निर्बल बाजुओं से उन्हें अपनी ओर खींचते हुए बोली—“ज़रा मेरे समीप आ जाओ न !”

मैं उससे बिलकुल सटकर बैठ गई। तभी वह बोली—
 “मेरी नरगिस ! कल जब तुमने कहा था तो मैंने इस पर विश्वास नहीं किया था। मेरे दिल में सन्देह जरूर पैदा हुआ था, लेकिन आज मैं सब बात अच्छी तरह जान गई हूँ। रात को जब तुम दोनों एक साथ बैठे हुए थे तो मैंने तुम्हें देखा था। तुम्हारी प्यार भरी बातें भी सुनीं थीं। मैं सब जान गई हूँ, नरगिस !”

मैं उसी तरह गुम-सुम बैठी रही। थोड़ी देर चुप रहने के बाद वह फिर कहने लगी—“सच ही तुम कितनी सुन्दर हो ! तुम पर तो किसी का भी मन रीझ सकता है। आज अगर मैं औरत के स्थान पर मर्द होती तो तुमसे उसी तरह प्रेम करने लगती, जिस तरह आज वह तुमसे करते हैं !”

उसका गला फिर रुँधा। गले को साफ़ करते हुए बोली—
 “तुम हो प्यार करने की चीज़। लेकिन तुमने मुझसे यह बात छिपाई क्यों ? शौहर की खुशी में ही बीबी की खुशी है। खामखाह मैं तुम दोनों के बीच एक बाधा-सी बनी रही !”

उसे बड़े जोर से खाँसी आई। उसका चेहरा तमतमा उठा। आँखें सूज-सी गईं। मैंने उगालदान आगे कर दिया और छाती मलते हुए कहा—“बेगम साहबा ! आराम कीजिए। ज्यादा बोलने से तबीयत और बिगड़ेगी !”

“अभी नहीं, नरगिस रानी ! अभी मुझे खून का घूँट उगलना नहीं है। उगालदान को नीचे रख दो और मेरे पास— बिलकुल पास आकर बैठो। मेरे दिल के साथ सटकर !” सल्मा इतना कहती हुई भावावेश में उठी और मेरे मुँह को प्यार से दोनों हाथों में लेकर बोली—“खूबसूरत नरगिस ! सल्मा अब जा रही है। अपने प्यारे मियाँ को मैं तुम्हारे सुपुर्द करती हूँ। मेरी बीमारी मैं तुमने जी-जान से सेवा की। इसके बदले मैं मैं तुम्हें अपनी

सबसे प्यारी चीज़—अपना शौहर देती हूँ ! देखना, उसे दुःख न होने पावे । चंचलता तो मनुष्य के स्वभाव में ही है नरगिस ! लेकिन उस जैसा आदर्मा तुझे न मिलेगा !”

उसने एक बार फिर खाँसा और खून का एक लाल-लाल लोथड़ा उस सफेद उगालदान में कराह उठा । तौलिये से उसका मुँह पोंछते हुए मैंने कहा—“आराम कीजिए !” लेकिन उसने जैसे सुना ही नहीं, बोली—“मेरे शौहर की प्यारी नरगिस ! मेरी छाती से लग जाओ !” और मैं अनजाने ही, मानो किसी ने मुझे ऐसा करने पर विवश कर दिया, उसकी छाती से जा लगी । उसने अपने क्षीण बाजुओं से मुझे कसकर पकड़ लिया और मेरे गाल चूमते हुए कहा—“नरगिस ! मिथ्याँ को खुश रखना । वह अब तुम्हारे हवाले हैं—और—मेरा सलाम भी कहना !”

बस यही सल्मा के अन्तिम शब्द थे । इसके बाद वह ऐसी चुप हुई कि फिर नहीं बोली ।

डॉक्टर आया । उसने देखा तो दंग-सा रह गया । बोला—“एकदम इतना डिप्रेशन ! सारा खून मानो किसी ने चूस लिया हो । नब्ज का तो कहीं पता ही नहीं चलता !” पाँच-दस मिनट वह खाली पींजरे में पत्ती को टटोलता रहा । जब कुछ न मिला तो सर का हैट उतार कर बाहर चला गया । जाती बार उसने इतना ही कहा—“दुःख है, मैं तुम्हारी बीबी को मौत के पंजे से छुड़ा नहीं सका ।”

सल्मा मर चुकी थी । घर में मातम छा गया । रोना-धोना रंजो-गम सब-कुछ होना ही था और हुआ । अस्लम को तो रोना ही था, मैं भी रोई, लेकिन यह सब-कुछ दिनों की बातें थीं । लोग प्यारे से प्यारे सम्बन्धी की मृत्यु को भी भूल जाते हैं । पहले दुःख घटता है, थोड़े दिनों बाद वह ख़त्म हो जाता है और तब वही

जीवन की गति; वही रंग-ढंग, वही आनन्द-भंगल की बातें ! और फिर अस्लम ने एक पत्नी खोकर दूसरी पा ली थी । उसके लिए जैसे एक खिलौना टूटा, दूसरा मिल गया । पहले के लिए दिल में कसक जरूर थी, लेकिन दूसरे की चमक ने उसे ढाँप लिया । सल्मा की मौत की आहो-पुकार नरगिस के व्याह की शह-नाई में दब गई !

अस्लम की आगोश में मैंने अपना चिर लालायित जीवन पाया था । अस्लम भी उस जीवन में खुश था—बहुत खुश और हम दोनों जैसे दुनिया भर को भूलकर एक दूसरे में ही खो गए थे । हमारे हर ओर आनन्द, वैभव, ऐश्वर्य बिखरा पड़ा था । हम ताजा फूलों की नाजुक पत्तियों पर सोते और हरी-हरी घास पर चमकती हुई ओस से खेलते हुए अपना जीवन बिता रहे थे ।

हम दुनिया में नहीं, स्वर्ग में रहते थे !

लेकिन, उफ़, नलिनी बीबी ! यह स्वर्ग उस नरक से भी दुखतर था, जिसमें पापियों को धधकती भट्टी में भोंका जाता है, जहाँ कलुषित लोगों का एक-एक अंग इस तरह काटा जाता है कि उसे दर्द तो होता रहे लेकिन वह बेहोश न हो सके, जहाँ बुरे आदमियों को लोहे की लाल-लाल गर्म सलाखों से दाग-दाग कर तड़पाया जाता है । हमारा यह स्वर्ग, उफ़, नलिनी बीबी ! आज भी जब मैं उन दिनों की कल्पना करती हूँ तो मेरा रोम-रोम सिहर उठता है एक अज्ञात आन्तरिक प्रताड़ना मेरा अंग-अंग भींच डालती है !

जानती हो क्यों ?

हमने अपने स्वर्ग की नींव सल्मा की हड्डियों पर रखी थी । हमने अपने उपवन में सुख का पौधा सल्मा के रक्त से सींचा था । हमने किसी का आनन्द बेचकर अपने लिए यह स्वर्ग मोल लिया था ।

किसी भी वक्त मुझे सल्मा का ध्यान आता तो मैं काँप उठती। मुझे ऐसे लगता मानो कोई लगातार मेरी पीठ पर तेजी से तड़ातड़ कोड़े बरसा रहा है। मैं चीख उठती—एक भीषण भैरव आर्त्तनाद ! अस्लम पूछता—“क्या हुआ है नरगिस !” तभी मेरा स्वार्थ मेरे मुँह पर ताला लगा देता। इस भयंकर वेदना को छिपा ही हुई कहती—“कुछ नहीं, ऐसे हो ज़रा एक डरावना सुपना आ रहा था !”

पाप को जितना दवाने की कोशिश करो, वह उतना ही उभरता है। दिल के कोने में बैठी हुई आत्मा विद्रोह कर-कर उठती है। पाप को मेटने का ढंग मैंने पाप समझा था। परन्तु यहाँ लोहे से लोहा न कटा। मैंने इस बात को जितना दवाना चाहा, वह उतनी ही उभरी। आत्म-प्रताड़ना इतनी बढ़ी कि अब मैं इसे और न सह सकी।

एक दिन—

मैं ड्राइङ्ग-रूम में बैठी थी कि अस्लम आया। आते ही उसने पीछे से मेरी आँखें अपने हाथों से ढाँप लीं। बोला—“कौन !” और वह खिल-खिलाकर हँस पड़ा। मैं भी हँस पड़ी। मेरे पास बैठते हुए उसने कहा—“तुम डरो नहीं क्या नरगिस ! एक रोज़ मैंने ऐसे ही आकर सल्मा की आँखें बँद की थीं तो वह चौंककर बेहोश हो गई थी। तब बहुत मुश्किल से उसे होश आया था !”

मैं इस बात को सुनकर मुसकराई तो—पर सल्मा का नाम सुनते ही मुझे ऐसे लगा मानो उसकी हड्डियाँ भाले की नोक की तरह मेरी छाती में चुभी जा रही हैं। मैं तड़प उठी और उस दिन इस बात का मुझ पर इतना असर हुआ कि मैं सारा दिन और सारी रात बेचैन-बेचैन-सी रही। रात-भर मुझे एक पल भी नींद

नहीं पड़ी । चारपाई पर लेटे-लेटे मुझे लगा कि सल्मा—चिट्ठे सफेद कपड़े पहने, बाल पीछे को लटकाये—मेरी ओर आ रही है । उसकी आँखों से अङ्गारे निकल रहे हैं, अपने दोनों हाथों की अँगुलियों को फैला-फैलाकर वह मुझसे कहती है—“तुमने—तुमने डायन, मेरा शौहर मुझसे छीन लिया ! तुमने—तुमने हम दोनों को एक दूसरे से अलग कर दिया !” मैं चीख उठी । अस्लम पास ही सोया पड़ा था । हड़बड़ाकर उठा—“क्या हुआ है ?” लेकिन मैं खामोश रही । वह भी सो रहा । तभी फिर सल्मा मेरे पास आई—अब के वह आगे से भी ज्यादा भयानक थी । उसके हाथों में लाल-लाल गर्म सलाखें थीं । वह मेरी ओर बढ़—सलाखों का मुँह मेरी ओर था—वह निरंतर मेरी ओर बढ़ रही थी । मैं आँखें खोले अपलक उसे देख रही थी । मुझे बहुत जल्दी-जल्दी साँस आने लगा था, मैं पसीना-पसीना हो रही थी । वह बोली—“डायन ! ले अपने किये का फल भोग !” और तभी वह सलाखें मेरी आँखों में घुमेड़ने लगी—मैं चिल्लाई ! सारा कमरा चिल्ला उठा ।

अस्लम घबराकर उठा और मेरे पास आकर बोला—“क्या हुआ है, क्या हुआ है !” उसने मेरी आँखें देखीं, दिल देखा—मैं बेहोश हांगई थी । सुबह मुझे पता लगा कि मैं छः-सात घण्टे बेहोश रही । अस्लम बेचारा सारी रात मेरे पास बैठा रहा । सुबह जब मैंने आँखें उघारीं तो वह बोला—“अब तबीयत कैसी है !”

मैंने कहा—“अच्छी है !”

और तब वह खाने-पीने को कुछ बताकर अपने काम पर चला गया । उसके जाते ही मेरी निगाह सामने लटक रही सल्मा की तस्वीर पर पड़ी । उसमें सल्मा और अस्लम दोनों साथ-साथ खड़े थे । म एक-टक उनकी ओर देखती ही रह गई । मैंने देखा—

वह दोनों हँस रहे थे। दोनों खुश थे। तभी एक भद्दी-सी काली चीज़ उन दोनों के मध्य में आ गई। वह दोनों अलग-अलग हो गए। सल्मा डर के मारे बेहोश हो गई।

मैंने देखा—वह भद्दी काली चीज़ हौले-हौले एक रूप धार रही है। उसके अङ्ग प्रत्यङ्ग बनने लगे हैं। थोड़ी देर में वह काला बुर्का पहने एक औरत बन गई है। तभी उसने अपने मुँह से बुर्का हटा दिया। और मैंने देखा—वह औरत और कोई नहीं नरगिस हो थी !

अब तो मेरी सहन-शक्ति खत्म हो गई। मैं चारपाई से उठी। रात-भर की बेचैनी से मैं चूर-चूर हो गई थी। मेरे पाँव लड़खड़ा रहे थे तो भी मैं चली, अपना बुर्का ओढ़ा और थाने पहुँचकर मैंने सारी घटना बता दी। अन्त में मैंने कहा—“अस्लम को हासिल करने के लिये मैंने सल्मा को ज़हर दे दिया था। इसी से उसकी मौत हो गई।”

मुझे गिरफ्तार कर लिया गया। अस्लम मुझे जेल में मिला। बोला—“तुम क्यों खामखाह जेल में मर रही हो। मैं जानता हूँ, तुमने ज़हर नहीं दिया। तुम ज़हर दे ही नहीं सकतीं !” लेकिन मैं चुप रही। उसने बहुतेरा जोर लगाया कि मैं किसी तरह रिहा हो जाऊँ पर मैं तो रिहा होना ही नहीं चाहती थी। मैं अपने पाप का प्रायश्चित्त करना चाहती थी। मेरा मुकद्दमा शुरू हुआ। मैंने फिर वही बयान दिया। अस्लम ने इसे झूठा बतलाया, परन्तु डॉक्टर का बयान कुछ इस तरह हुआ कि मेरा जुर्म साबित हो गया।

मुकद्दमे का फैसला सुनाते हुए जज ने कहा—“नरगिस जितनी सुन्दर है उतनी ही ज़ालिम भी। उसने अपने स्वार्थ के लिए एक हरा-भरा चमन उजाड़ दिया। ऐसी कुलटा स्त्रियों के

लिए समाज में कोई स्थान नहीं होना चाहिए । मैं इसे बीस वर्ष की सख्त सजा देता हूँ !”

जज के फैसले का एक-एक शब्द इतना नुकीला था कि दिल में घाव पर घाव किये जा रहा था । इतना अपमान मैंने कभी न सहा था । लेकिन उस दिन मुझे ऐसा लगा कि जैसे वह घावों पर मरहम लगा रहा हो । मैं चाहती थी मुझे फाँसी हो जाय । लेकिन अब मैं समझती हूँ, उम्र कैद अच्छी है । फाँसी हो जाने से तो एक झटके में ही मेरी जीवन-लीला खत्म हो जाती । मुझे प्रायश्चित्त करने का अवसर ही न मिलता । अब पिछले पन्द्रह वर्षों से मैं तिल-तिल करके जल रही हूँ । मुझे इसमें सुख मिलता है । यह देखती हो—मेरे बाजू पर यह घाव ! डॉक्टर पूछता था—“यह ठीक क्यों नहीं होता ?” लेकिन वह क्या जाने कि इसे हरा रखने के लिए मैं हर-रोज इस पर नमक छिड़कती हूँ । फिर भी अच्छा होने लगता है तो चाकू से इसे गहरा कर लेती हूँ !

नलिनी वीवी ! मैंने सुना है, अस्लम पागल हो गया है और वहाँ सलाखों से माथा फोड़ता हुआ चीखा करता है—“सल्मा-सल्मा ! नरगिस नरगिस !” और मैं यहाँ जीवन के दिन गिना करती हूँ ! लेकिन अब मुझे कोई भी दुःख नहीं है, रत्ती-भर भी नहीं ।

मैंने पाप किया था । आज कारावास के इन सीखचों के पीछे उसका प्रायश्चित्त कर रही हूँ !

टाट की वर्दी

नन्दलाल ने क़त्ल किया या नहीं, यह कोई नहीं जानता था। उसके शेष जीवन की घटनाओं की तरह साधारण लोग इस घटना से भी पूर्णतया अपरिचित थे। अगर कोई कुछ जानता था तो यही कि एक छोटे बच्चे को क़त्ल करने के अपराध में नन्दलाल को पकड़ा गया। अदालत के बार-बार पूछने पर भी उसने किसी किस्म का कोई उत्तर नहीं दिया। सेशन जज का खयाल नहीं था कि इतनी अधेड़ उम्र में नन्दलाल एक मासूम बच्चे की हत्या कर सकता है, लेकिन उसके विरुद्ध प्रमाण इतना स्पष्ट था कि संदेह की कहीं गुञ्जाइश ही न थी। सम्भव था कि यदि वह अपनी सफ़ाई पेश करता तो छूट जाता, पर उसने तो जैसे सौ बात की एक बात चुप साध ली थी। जज और वकील पूछ-पूछ कर हार गए, लेकिन नन्दलाल के मुँह से एक शब्द भी न निकलवा सके।

कोई प्रश्न पूछे जाने पर वह खोया-सा अदालत की छत की ओर देखता और मानो छत की कड़ियाँ गिन रहा हो, एक छोर से दूसरी छोर तक बड़े हौले-हौले निगाह दौड़ा जाता। कभी-कभी वह उन लोगों की ओर भी एक अपराधी की-सी दृष्टि से देखता, जो उसका मुकद्दमा सुनने के लिए आए होते।

मामला साफ़ था। क़त्ल का जुर्म प्रमाणित हो चुका था। तो भी जज ने उसकी बूढ़ी अवस्था का ध्यान रखते हुए उसे फाँसी की बजाय उम्र कैद दे दी। उम्र कैद सुनकर भी उसके

चेहरे अथवा भाव-भङ्गी में कोई अन्तर नहीं आया। उसने एक-बार जज की ओर देखा और चुपके से कटहरे से निकल आया। उसने किसी से कुछ नहीं कहा। उसके पाँव की बेड़ियाँ और हाथ की हथकड़ियाँ जरूर खनखनाईं। अन्यथा वह साक्षात् मौत-से सन्नाटे के साथ चल रहा था। हाँ, जेल में आकर उसने अपने एक साथी कैदी से इतना जरूर कहा कि अगर उसे फाँसी हो जानी तो अच्छा था। इसके बाद वह कुछ नहीं बोला।

जो हो, उसके बोलने या न बोलने से जेल के नियम और क्रायदे बदल नहीं सकते। ड्योढ़ी में उसका नाम रजिस्टर होते ही उसे पहले कपड़े उतरवाकर नये पहना दिए गए। यह कपड़े यद्यपि घर के कपड़ों से साफ थे, फिर भी इन पर बने वह बड़े-बड़े चौरस खाने और नीली लकीरें पुकार-पुकारकर कह रही थीं—“यह कैदी है!” तभी उसके गले में एक तख्ती लटका दी गई—“कैदी नम्बर ३४४” और पाँव की बेड़ियों को खनखनाता हुआ वह अपनी बैरक में पहुँचा दिया गया।

पहले दिन उसे कुछ काम नहीं दिया गया। उस रात उसने गेटी भी नहीं खाई। उसे जब दो बड़ी-बड़ी रोटियाँ और उन पर दाल दी गई तो उसने अपने साथी के हाथ में थमा दीं और स्वयं जाकर अपने उस फटे-से कम्बल पर पड़ा रहा। अगले दिन सुबह ही नम्बरदार ने उसे जगाया और मूँज बटने को दे दी। बुढ़े के जर्जर हाथों में मूँज के तीखे तीले फंसकर रह गए, लेकिन वह अपने काम से नहीं हटा। सुबह से लेकर शाम तक बिना किसी से एक शब्द कहे वह लगातार मूँज बटता रहा। इतनी तन्मयता के साथ काम करते देखा तो उसके साथी और नम्बरदार उसकी ओर घूर-घूर कर देखने लगे, पर वह जैसे दुनिया-भर को भूल कर उन आड़ी-टेढ़ी मूँज की रस्सियों में उलझ कर रह गया था। रात को जब वह खाना खाने बैठा तो उसके हाथों से लोहू

रिस रहा था। कहीं-कहीं वह जमकर काला हो गया था। वह रोटी को तोड़कर खाने लगा तो एक भयंकर वेदना से चीख उठा। उसके हाथ बहुत दुख रहे थे। लेकिन वह एक कैदी था और कैदी के दुख-दर्द का कोई मोल नहीं होता।

अगले दिन सुबह ही वह फिर उठा और काम पर जुट गया। हथेलियों पर जो थोड़ा-बहुत स्थान जखमी होने से बचा, आज वहाँ से भी लोहू बहने लगा। अपने हाथों की ओर देखकर उसने एक बार नम्रदार की ओर देखा। उसकी कातर टाटि कह रही थी कि यह काम एक बुढ़े के बस का नहीं। तभी नम्रदार ने परे खड़े एक कैदी के हण्टर जमा दिया। 'शप' की आवाज़ के साथ ही नन्दलाल चौंक पड़ा। उसने देखा, वह कैदी तड़पकर रह गया है। उसने अपने काम में ज़रा ढील की थी। गर्दन झुकाये वह फिर अपने काम में लग गया।

उस रात को जैसे उस पर पागलपन सवार हो गया। उसने अपनी रोटी और दाल उस परोसने वाले के मुँह पर दे मारीं। दाँत पीस-पीस कर उसने अपने कपड़े फाड़ने शुरू कर दिए। बिखरे-बिखरे हिलते दाँतों से उसने पाँव की बेड़ियाँ काट डालनी चाहीं। असफल रहने पर उसने अपना सिर धुन लिया। ज़मीन की गर्द अपने ऊपर उड़ा ली। अँगुली से उसने अपने बाल नोच डाले। उसके नथुने फूल आये।

इससे पहले कि दो-चार नम्रदारों ने आकर उसे पकड़ा, उसने नाखूनों से जहाँ-तहाँ छोटे-छोटे घाव कर लिए। एक नम्रदार ने चिल्लाकर कहा—“वहशी बन गए हो क्या, नन्दलाल !” नन्दलाल सचमुच वहशी बन गया था। वह सुध-बुध सब-कुछ खो बैठा था। जब उसे रस्सों से जकड़ दिया गया तब भी उसका वहशीपन दूर नहीं हुआ। वह मुट्ठी-भर घिसी हड्डियाँ अब भी

उन मोटे मजबूत रस्सों को तोड़ डालना चाहती थीं। उसने दाँतों को किचकिचाते हुए अपने दोनों हाथों की हथेलियों की ओर देखा। हाथों से तो खून बह रहा था, लेकिन उसकी आँखों से आग !

— x —

और इसके बाद लाख कोशिश करने पर भी वह नन्दलाल से कुछ काम ले नहीं सके। उसकी इस उद्वेगता के फलस्वरूप उसे चक्की में बन्द कर दिया गया। पीसने के लिए अठारह सेर गेहूँ ढेर लगा दिए। लेकिन नन्दलाल था कि ज़मीन तो हिल सकती थी, पर वह अपनी जगह से टस से मस नहीं हुआ। इसके बाद उलटी हथकड़ी, खड़ी हथकड़ी, डंडा बेड़ी सब उसके हठ के सामने हार गईं। बड़े साहब ने हुक्म दिया, “इसे रोटी देने की बन्द कर दी जाय !” लेकिन उसे इस बात की परवाह न थी। वह तो जैसे जीवन से निराश हो चुका था। वह चाहता था कि वह बिन खाये ही मर जाय। दो दिन तक उसे भूखा रखने का भी कोई परिणाम नहीं निकला। वह उसी तरह से गर्दन झुकाये, निराशा की प्रति मूर्ति बना अपनी उस तंग कोठरी में बैठा रहा। उसने एक बार भी रोटी की माँग नहीं की।

आखिर तंग आकर उसे टाट-बर्दी पहनाकर कालकोठरी में बंद कर दिया गया। बड़े साहब का खयाल था कि बुढ़ा नन्दलाल इस सज़ा से सीधे रास्ते पर आ जायगा। बड़े-बड़े दिलेर और जवान आदमी यहाँ आकर हार गए थे, लेकिन नन्दलाल को तो जैसे जीवन का कोई मोह ही शेष न था। टाट-बर्दी पहन लेने के बाद उसने रोटी खानी भी छोड़ दी। मुशक़्ती रोज़ उसकी कोठरी के सीखचों के पास दो रोटियाँ और उन पर थोड़ी दाल रख

जाता । नन्दलाल एक बार उनकी ओर देखता और उसका पेट भर जाता ।

उसकी आँखें अन्दर-अन्दर धँस गई थीं । रँग काला पड़ गया था । ओठों पर सिकड़ी-सी जम गई थी । गाल पिचककर रह गए थे । और नन्दलाल था कि इन सब बातों से बेपरवाह अपनी उस तंग कोठरी में बैठा रहता । नन्हीं-नन्हीं चुहियाँ आकर उन रोटियों को कुतरतीं और वह उन्हें चुपचाप देखता रहता । कभी-कभी पास पड़ी भभरी स मिट्टी के प्याले में पानी उँडेलकर दो-चार घूँट पी ले तो पी ले वरना वह था और थी उसकी वह एकाकी कोठरी । उस अंधेरे में वह शायद वह मौत का आह्वान किया करता । उसकी आँखें जैसे मृत्यु सन्देश की प्रतीक्षा किया करतीं ।

— x —

जेल वाले किसी भी ज़िद्दी कैदी से अधिक ज़िद्दी होते हैं । जो अड़ बैठे, उससे काम लेने के लिए उनके पास बहुत तरीके हैं, कठोर-से-कठोर सजाएँ हैं और वह हर तरीके का अपना उल्लू साधने के लिए बरतते हैं । लेकिन जब कैदी किसी तरह भी न माने तो आखिर हारकर वह उसका खयाल छोड़ देते हैं और उससे लापरवाह-से हो जाते हैं ।

नन्दलाल को जब वह किसी तरह काबू में न कर सके तो उसे काल कोठरी से निकाल दिया गया । बड़े साहब ने उसे बुलाकर कहा—“नन्दलाल ! तुम्हारी ज़िद्द के सामने हमारी सख्ती हार गई । अब तुमसे किसी तरह का काम न लिया जायगा । जाओ, यह टाट-वर्दी उतार दो और दूसरे कपड़े पहन लो !”

नन्दलाल ने साहब की ओर कुछ इस तरह देखा, मानो

अर्ज करना चाहता हो। साहब ने उसकी आँखों में देखते हुए कहा—“क्या चाहते हो तुम ?”

“मैं...मैं...!” नन्दलाल कहता-कहता रुक गया।

साहब को जैसे उससे सहानुभूति होने लगी थी। उसकी दयाद्र शक्त देखकर उसका कठोर हृदय भी पसीज उठा। साहब ने चाहा कि वह उसे कुर्सी पर बैठ जाने को कहे, लेकिन ‘प्रतिष्ठा’ ने उसका मुँह पकड़ लिया। तो भी वह बोला—“क्यों, बोलो ?”

कुछ अस्फुट तथा बिखरे-से शब्दों से उसने कहा—“मैं टाट-वर्दी नहीं उतारूँगा !”

आस-पास खड़े सब लोग उसकी ओर ताकते रह गए। साहब के इतना मेहरबान होने पर उसने माँगा तो यह कि उसे टाट-वर्दी पहरे रहने की इजाजत दी जाय। हर किसी ने मन में कहा—‘यह पागल है !’ लेकिन नन्दलाल अपने मन में यह सोचता था—‘यह टाट-वर्दी, इसकी इन मोटी-मोटी रस्सियों से शरीर को कितना आराम मिलता है। जैसे मेरी उभरी रगों के साथ इसकी रगें मिलकर एक हो गई हैं !’

साहब ने भी आश्चर्यचकित निगाहों से एक बार उसकी ओर देखा और कहा—“हमें तो इसमें कोई एतराज नहीं। लेकिन...!” और इससे पहले कि साहब आगे कुछ कहता, नन्दलाल जाने लगा। कोई और अवसर होता तो शायद इस बद-तमीजी के लिए साहब उसे डाँट देता, लेकिन आज तो माजरा ही और था, साहब उस पर मेहरबान थे और इस मेहरबानी का ‘सदुपयोग’ करते हुए नन्दलाल ने टाट-वर्दी माँगी थी—कैदी जिसका नाम सुनते ही थर्रा उठते हैं !

मरियल टट्टू की चाल से चलते नन्दलाल की ओर सब

लोगों ने एक बार फिर देखा और जेल का काम उसी तरह चलने लगा ।

— x —

अब नन्दलाल था और थी उसकी टाट-वर्दी । काम-काज उसे था कुछ नहीं । मुशकत बन्द थी । दिन-भर सिवा घूमने के उसे कोई धंधा न था और घूमने-फिरने की उसे कोई मनाही न थी । पौ फटते ही वह उठता । नहाने की उसने कभी जरूरत नहीं समझी थी, पूजा-पाठ से उसे कोई लगाव न था । इसलिए एकध रोटी डकारकर लोहे की बाटी का तकिया बना वह लेट रहता । थोड़ा सुस्ता लेने के बाद उसकी वह सैर शुरू हो जाती, जिसका कोई आर था न छार । दिन-भर में जेल की सब सड़कों को वह कितनी बार काटता, इसकी कोई गिनती न थी । गरदन झुकाये, माना जमान क कंकर गिन रहा हो, अपनी वह बारी की कभीज और कच्छा पहने वह चला करता । आस-पास उसके क्या हो रहा है, इसकी उसने कभी परवाह न की थी । जेल में नये आने-जाने वालों से मिलने-जुलने की हर किसी की लालसा होती है, कैदी इसके लिए कई-कई 'तकड़म' लड़ाते हैं । लेकिन नन्दलाल ने कभी किसी से मिलने तक की चेष्टा नहीं की । कैदी आते, पुराने कैदियों से नन्दलाल का परिचय पाते, कुछ उसकी अवस्था पर आश्चर्य चकित रह जाते, कुछ उससे थोड़ी सहानुभूति दर्शाते और चले जाते । नन्दलाल था कि इन सब से बेखबर, सबसे बेपरवाह—जैसे दुनिया-भर में वह अकेला ही बसता हो ।

अचानक पूस की तेहरवीं को सब वार्डों और पास-पड़ोस के कैदियों ने हैरान होकर देखा, नन्दलाल बराबर हस्पताल के चक्कर लगा रहा है । जैसे ही हस्पताल के अंदर से किसी के चीखने की आवाज आती, वह सिहर-सा उठता और उसका

उठा कदम जहाँ-कहाँ-तहाँ ही रुक जाता। दीवार से सटकर वह जैसे उस आवाज़ को पहचानने की चेष्टा करता, लेकिन उसके कानों के नाजुक पर्दे जेल की उन कठोर दीवारों को उल्लाँघ नहीं सके।

और तब वह जैसे अपनी सारी शक्ति बटोरकर हस्पताल के दरवाज़े की ओर बढ़ा। कई बरसों के बाद पहली बार उसने जमादार से पूछा—“यह अन्दर कौन चीख रहा है?”

जमादार बोला—“कल रात एक कैदी आया है, दूसरी जेल से। बहुत बीमार है। वही है।”

नन्दलाल की जिज्ञासा इस उत्तर से खत्म नहीं हुई। उसने फिर पूछा—“कौन है वह?”

“यह तो मैं नहीं जानता,” जमादार ने कहा—“उधर मुलतान का रहने वाला है, शायद, अभी बेचारे की उम्र कुछ नहीं और इतनी सज़ा मिल गई!”

नन्दलाल को इस तरह स्वभाव के विपरीत बातें करते देखकर आस-पास के दूसरे वार्ड और जमादार भी आ इकट्ठे हुए थे। उनमें से एक ने बताया—“अभी कुल अठारह बरस उम्र है और डाँके के जुर्म में पाँच साल की सज़ा हो गई। बच्चा ही तो है, तभी तो जेल की सख्तियाँ सह नहीं सका। बेचारा बीमार...!” संभव था वह आगे भी कुछ और कहता, लेकिन तभी अन्दर से वह फिर चीखा। नन्दलाल काँप उठा और भागा-भागा उधर गया। लेकिन वहाँ दीवारें थीं, नन्दलाल उन्हें पार नहीं कर सकता था।

उस सारी रात नन्दलाल सो नहीं सका। रह-रहकर उसके कानों में किसी की दयार्द्र चीख पड़ती और वह चौक-सा उठता। उसे भास होना, मानो उसका कोई आत्मीय वहाँ हस्पताल में पड़ा

तड़प रहा है। रात को एक बार उठा और उसने चाहा कि अभी जाकर उसे देख ले, लेकिन बैरक बन्द थी।

प्रातः ही लोगों ने उसे ड्योढ़ी में देखा। वहाँ वह किसी से बोला नहीं, सीधा साहब के कमरे में जाकर मेज़ के सामने खड़ा हो गया। साहब ने नन्दलाल को इस तरह एकाएक देखा तो वह उस अद्भुत जीव की बात सुने बिना रह नहीं सके। बोले—“कहो नन्दलाल, आज क्या बात है?”

“एक बात है...!”

इसी बीच में साहब हँसते हुए कहने लगे—“क्यों टाट-चर्दी चाहिए!”

नन्दलाल को यह मज़ाक अच्छा नहीं लगा। लेकिन बोला—“कल रात हस्पताल में एक बीमार छोकरा आया है, मैं उसकी देख-भाल करना चाहता हूँ। आपकी इजाज़त...!”

साहब ने पास खड़े अर्दली की ओर इस तरह देखा, मानो वह पूछना चाहते हों—“कौन है वह?” और अर्दली उनकी बात समझ कर बोल उठा—“साहब, वह दीनू पेंज-साला!”

“ओह!” साहब बोले—क्यों, क्या वह तुम्हारा संबंधी है?”

नन्दलाल ने इसका कोई उत्तर नहीं दिया। सिर्फ़ गरदन झुकाकर खड़ा रहा। साहब ने सोचा, निरुद्देश्य फिरने की बजाय किसी काम में लगा रहने से शायद इसका जीवन कुछ सुधर जाय। इसलिए उसे दीनू के साथ हस्पताल में रहने की इजाज़त दे दी।

— x —

और दीनू नन्दलाल के अन्धकारमय जीवन में एक उज्ज्वल जोत बनकर आया। उसके निराश संसार में उसने आशा के बीज बो दिए। नन्दलाल आज तक काँटों में उलझकर रह गया

था। दीनू की ओर उसने देखा तो पाया कि इन काँटों में एक फूल खिला है और उसी को खिला रखने के लिए उसने उन काँटों को भी हरा रखने की सोची।

दीनू के संपर्क से नन्दलाल का जीवन ही पलट गया। उसके दिल में मोह का अंकुर फूट-सा उठा और वह उस बीमार की ओर बरबस खिंचा चला जाता। दीनू को रोग के कारण इतना कष्ट था या नहीं, लेकिन नन्दलाल दीनू के रोग के कारण हर वक्त बेचैन रहता। वह चाहता कि अपना सब-कुछ लुटाकर भी दीनू को थोड़ा सुख पहुँचा सके।

बीमार आदमी के स्वभाव में चिड़चिड़ापन आ जाना स्वाभाविक ही है और दीनू तो फिर अभी बच्चा था। जिद्द तो उसे करनी ही थी। परन्तु नन्दलाल इससे कभी उकताया नहीं। रात-दिन उसकी देख-रेख में लगे रहने से भी वह कभी थका नहीं।

दीनू को कई चीजों की जरूरत होती। वह किसी-न-किसी तरह से उन्हें पैदा करता। इसके लिए उसने नम्बरदारों से, वार्डरों, जमादारों और कैदियों से मेल-जोल बढ़ा लिया था। अब प्रायः लोग उसे बातें करते देखते। वह लोगों के साथ हँसता भी और कभी-कभी मजाक तक करता। लेकिन वह किसी भी क्षण दीनू की बीमारी को नहीं भूला।

जेल के डॉक्टर ने कहा था कि दीनू को मियादी बुखार है, इसके साथ ही खाँसी भी। आज जो यह इक्कीस दिन हो जाने पर भी नहीं उतरा तो इकतालीसवें रोज उतरेगा। नन्दलाल को तब ऐसे लगा था, मानो बीस दिन एक युग के बराबर हों। अनायास ही उसने एक ठण्डी साँस ली--“बीस दिन”

फिर भी उसने हिम्मत नहीं हारी। डॉक्टर के कहने के

मुलाबिक वह उसे दवाई पिला देता, हर वक्त देखता रहता कि उसे किसी तरह का कोई कष्ट तो नहीं। एक दिन नन्दलाल सिर-हाने बैठा दीनू का सिर दबा रहा था कि दीनू बोला—“दादा ! यह बोरी के कपड़े क्यों पहने रहते हो ?” और तभी वह चीखा “अरी मैया ! कितने चुभते हैं यह !”

“ओह !” नन्दलाल एकाएक उठ खड़ा हुआ। उसे अपने पर गुस्सा-सा आया। एक कोमल नाजुक बीमार के पास वह इन कपड़ों से क्यों आता है। उसका जी चाहा कि अभी इन कपड़ों को चोरा-चीरा कर दे और इसी भावावेश में वह अपनी बैरक की ओर भागा गया। क्रोध में ही उसने अपना कुरता उतार डाला और दोनों हाथों से खींचकर उसे फाड़ने लगा।

तभी उसे अपनी बूढ़ी बाहों पर उभरी हुई नसें दिखाई दीं और एकाएक उसके मन में टाट की रंगों के साथ अपनी रंगों का सामंजस्य जाग उठा। उसके तने-खिंचे हाथ अड़े-खड़े रह गए। अनायास ही उसके मुँह से शब्द फूट पड़े—“पागल नन्दलाल ! अपनी रंगें काटकर तू जिंदा कैसे रहेगा ?”

लेकिन वह इन कपड़ों को दोबारा पहन नहीं सका। दीनू को इनसे दुःख होता है, वह जो इन्हें पसन्द नहीं करता। उसने नये कपड़े पहन लिए। तो भी टाट-बर्दी उसने फेंकी नहीं। तह करके नन्दलाल ने उसे अपनी बैरक के उस कोने में रख दिया, जहाँ वह सोता था। उसके ऊपर उसने दरी बिछा दी।

×

×

×

नन्दलाल के जीवन में यह एक ऐसा परिवर्तन था, जिस-पर चर्चा किये बिना कोई रह नहीं सका। हर किसी ने कहा—“बूढ़े का तो जीवन ही पलट गया”—“इस छोकरे ने बुझते दिये में तेल डाल दिया।” लोगों की यह बात गलत नहीं थी।

दीनू नन्दलाल के जोवन में एक जोत बनकर आया और इस जोत से ही मानां नन्दलाल की बुझती जोत एकबार फिर प्रदीप्त हो उठी थी। लेकिन दीनू ने उसके बुझते दिये में जो तेल डाला था, वह जैसे ही अचानक आ गया था, वैसे ही एकाएक वह खत्म हो गया। नन्दलाल के जीवन-दीपक की लौ, जो एकाएक ही चमक पड़ी थी, फिर मद्धम पड़ने लगी।

दीनू नन्दलाल के हजार जतन करने पर भी बीमारी के उस पंजे से नहीं छूट सका, जिसने उसे आ दबोचा था। डॉक्टर ने कहा था—“कल इसका बुखार उतर जायगा, लेकिन आज रात बहुत खतरा है !” दीनू ने उस रात पलक भी नहीं भपकी। अगले दिन सुबह तीन बजे ही उसका बुखार बढ़ना शुरू हो गया और बढ़ते-बढ़ते इतना बढ़ा कि दीनू का कहीं नाम ही न रहा। मुट्ठी-भर हड्डियों के ऊपर सेर-भर माँस का एक लोथड़ा-सा तो चारपाई पर पड़ा था, लेकिन वह दीनू—जिसने नन्दलाल के जीवन में जी डाल दिया था, अब नहीं था।

दम तोड़ते हुए दीनू चीखा और तड़पकर बोला—“दादा ! मैं जा रहा हूँ !” और तब एक हिचकी, उखड़ा-सा साँस, गले में थोड़ी-सी खारिश—दीनू खत्म !

नन्दलाल का जैसे सब-कुछ लुट गया हो। जैसे उसके घर-बार, धन दौलत को एक ही बार किसी ने उसके सामने ही फूँक डाला हो और वह कुछ कर न सका हो। डॉक्टर वहीं था और भी बहुत-से आदमी थे—नम्बरदार, कम्पाऊण्डर, वार्डर—थोड़े-से दूसरे मरीज। सबको दीनू से कुछ उन्स-सा हो गया था। उसकी इस दुखद मृत्यु पर सभी का जी पसीज उठा। कइयों की आँखों की कोर में पानी भी छलकने लगा। सभी ने सहानुभूति-पूर्ण नेत्रों से नन्दलाल की ओर देखा, लेकिन वह जैसे पत्थर का

चुत बना खड़ा था। उसकी आँखें चौपट खुली थीं। वह एकटक दीनू के शव की ओर देख रहा था। उसकी आँखों में कहीं भी पानी नहीं था--बिलकुल शुष्क--जैसे किसी ने अस्पृश्य निचोड़-कर सुखा दिया हो !

सब आश्चर्य-चकित-से नन्दलाल की ओर देख रहे थे। तभी वह काँपने-सा लगा। उसके हाथ इधर-उधर थर-थर हिलने लगे। उसके होठों पर कंपन-सा छा गया। वह कुछ प्रस्फुटित-से हुए और दो-तीन शब्द विखर-से पड़े--“टाट--टाट-वर्दी--टाट-वर्दी कहाँ है...!” और तभी काँपता हुआ वह अपनी बैरक की ओर गया। उसके पाँव लड़खड़ा रहे थे, लेकिन वह चला जा रहा था। बीच-बीच में वह बड़बड़ा उठता--“टाट...टाट वर्दी...टाट...!” अपनी बैरक में पहुँचते ही उसने वह पहले कपड़े उतार डाले। दूरी के नीचे से टाट-वर्दी उठाई, उसे एक बार चूमा और फिर पहन लिया।

आज भी नन्दलाल उसी टाट-वर्दी में जेल की भूमि नापा करता है। जमीन की ओर देख-देखकर धीमे-धीमे वह कुछ इस तरह चलता है कि मानो वह जमीन की एक-एक कंकरी गिन लेना चाहता है। उसके हाथों और बाहों पर उठी हुई नज़ों और टाट-वर्दी के रेशों में कुछ ऐसा सामंजस्य है कि दर्शक की आँखें अनायास ही उधर खिंच जाती हैं। लेकिन नन्दलाल को इसकी कुछ भी खबर नहीं। वह उसी तरह चलता रहता है। किसी से बोलता नहीं, किसी से हँसता नहीं। हाँ, कभी-कभी वह बड़बड़ा उठता है--“दीनू दीनू !” और तभी आँखों के आगे अपने काँपते हुए हाथ कुछ इस तरह फेरता है मानो वह वहाँ से कुछ हटाना चाहता है और कह उठता है “टाट...टाट-वर्दी...टाट...!”

बोल जवान

जग्गू के नाम से जिला जेल के लगभग सभी कैदी परिचित थे। पुराने तो उसे जानते ही थे, नये भी आते ही कानोका न उस जग्गू की भनक पा जाते, जो कैदियों के लिए एक देवता था। जेल में एक की सहानुभूति बाहर के बसियों लोगों के लाड-प्यार से कहीं अधिक सुखकर होती है। जग्गू की इसी सहानुभूति ने उसे देवता बना दिया था। हर किसी का दे-ले कौन सकता है, पराई जगह प्यार के दो शब्द ही सब-कुछ होते हैं।

और फिर जेल—!

भारत की इन जेलों में बड़प्पन और अधिकार का बोल-वाला है और 'अपनों के ऊपर अपनों के दबाव' की नीति स्पष्ट दीख पड़ती है। होते सभी कैदी हैं—एक-जैसे, एक ही तरह के अपराधी। लेकिन उन्हीं में बिल्ले वाले, काली-वाले और पीली-वाले नम्बरदार बनाकर उन्हीं पर उनसे शासन किया जाता है। और फिर यह नम्बरदार 'साहब' की हजार खुशामदें करने के बाद जब नम्बरदारी पा जाते हैं तो अपने संगी कैदियों को उसी तरह भूल जाते हैं, जैसे कोई तहसीलदार बनकर अपने गरीब भाइयों को। जेल से इस प्रबन्ध को देखकर किसी गुलाम देश का नक्शा स्पष्ट दीखने लगता है। जग्गू भी अपनी एक तहाई कैद काटने के बाद नम्बरदार बना था, लेकिन नम्बरदार बन जाने पर भी—वहाँ अपने साधारण साथियों के दुःख-दर्द को भूला नहीं

था। नम्बरदार बन जाने पर उसे कोई 'अधिकार' तो मिल न गये थे, तो भी उससे जहाँ तक बन पड़ता, दूसरे के दुःख दूर करने की चेष्टा करता। जग्गू की इसी बात पर सब उससे खुश थे। जेल के इस 'शासन' में जग्गू की स्थिति एक रहम-दिल और सर्व-प्रिय तहसीलदार की-सी थी।

दिन में दो-चार घण्टे साहब की अर्दली में रहनेके अलावा उसे रात को चक्कियों पर भी पहरा देना पड़ता। उसका काम पूर्ण-तया निर्यामत रूप में और कायदे से चलता। ठीक समय पर वह चक्कियों के दरवाजे पर पहुँच जाता और पहले नम्बरदार की जगह पहरा देने लगता। रात-भर वह पूरी मुस्तैदी के साथ अपनी ड्यूटी पर रहता और प्रातःकाल ही हर कोठरी के बाहर खड़े होकर बहुत हलीमी से कहता—“बोल जवान !”

रात-भर गरमी के कारण करवटें बदलते-बदलते इस आखिरी पहर में ही कैदी ज़रा सुख की नींद सोते हैं। इसी समय नम्बरदार का उसे जगाकर कहना—‘बोल जवान’—कितना बुरा लग सकता है, इसका अनुमान वह सिपाही ही कर सकता है, जो रात-भर कार्य करने के बाद ज़रा भपकी ही ले पाया हो कि दुश्मन ‘धॉय’-से तोप दाग कर हमला कर दे। जग्गू इस बात के कष्ट से अपरिचित न था। वह स्वयं ऐसी हालत में रह चुका था और उसे भी हर रोज़ ‘बोल जवान’ सुनते ही इसका उत्तर देना पड़ता। लेकिन यह जेल का नियम है, इसे वह बदल नहीं सकता। जल्लाद चाहे भी तो फाँसी वाले को रिहा नहीं कर सकता, तो भी जग्गू की मीठी और प्यार-भरी आवाज़ के कारण कैदी इसे ‘मीठा ज़हर’ समझकर पी लेते। और जब वह कहता—“बोल जवान !” तो कहते—“जीते हैं भाई !” कोई-कोई तो बस हुंकारा ही भरकर रह जाता।

नियमानुसार जग्गू हर कोठरी के 'बाहर बोल' जवान कहता हुआ जा रहा था कि ग्यारहवीं कोठरी के पास अचानक ही वह ठिठक गया। आदत से मजबूर उसके ओठ 'बोल जवान' कहने को हिले तो, किंतु उनमें से शब्द न निकले। 'बो' कहने को उसके ओठ आपस में मिले थे—लेकिन अनायास ही वह खुल गए। उसने देखा—ग्यारहवीं कोठरी का कैदी परले कोने में दीवार से चिपका खड़ा है। उसकी आँखें इस तरह खुली हैं, मानो वह कोई बहुत भयानक चीज देख रहा हो। उसका शरीर आँधों में कोमल पत्ते की तरह काँप रहा था। उसके चेहरे पर हवाइयाँ उड़ रही थीं। बार-बार वह अपने हाथ को इस तरह हिलाता, जैसे वह किसी चीज को अपने सामने से हटा रहा हो !

जग्गू ने विस्मयपूर्ण भाव से कहा—“जुम्मा !”

लेकिन जुम्मा वैसे-का-वैसा ही खड़ा था। अब उसके ओठ भी काँपने लगे थे। नथुने फड़क-फड़क उठते। वह दाँत पीसने लगा। एकाएक उसने जोर से चीख मारी और उसके मुँह से भाग-से निकलने लगे। जग्गू ने फिर जोर से कहा—“जुम्मा ! जुम्मा !”

जुम्मा अब भी वैसे ही था। जग्गू ने दरवाजा जोर से खट-खटाया। उस पर इसका कोई असर न था। जग्गू के दिल में उमड़ती सहानुभूति ने उसे अपनी गोद में ले-लेना चाहा, लेकिन बाहर ताला लगा था। ताली जमादार के पास थी। जग्गू ने जोर से हाँक लगाई—“नम्बरदार, ओ नम्बरदार !”

दूर परे नम्बरदार ने जवाब में यही कहा तो जग्गू ने कहा—“जमादार को बुलाइये ज़रा !” और स्वयं जुम्मा की ओर ध्यान से देखने लगा। उसने दो-तीन बार उसे बुलाया भी, लेकिन व्यर्थ।

तभी उसने देखा कि अब जुम्मा के चेहरे पर घबराहट के चिह्न कम होते चले जा रहे हैं। उसका काँपता शरीर कुछ स्थिर हो चला था। उसकी आँखें पलक लेने लगी थीं। जग्गू को इससे कुछ तस्कीन मिली। किसी का दुःख मिटता देख उसे सुख होता था।

जब तक जमादार आया तब तक जुम्मा अपनी साधारण अवस्था में आ गया था। फिर भी जग्गू ने ताला खुलवाया और अन्दर जाकर उसके पास बैठ गया। पूछा—“क्या हुआ था, तुम्हें?”

जैसे किसी को भारी यंत्रणा से छुटकारा मिला हो, ऐसे ठण्डी साँस लेकर उसने कहा—“कुछ नहीं, ऐसे ही ज़रा दिल घबरा रहा था?”

जग्गू अभी जुम्मा को उस हालत को भूला नहीं था। ‘ज़रा दिल घबराने से ऐसी हालत नहीं हो सकती, यह बात वह जानता था। तो भी इस समय अधिक बातचीत करके वह उसे और परेशान नहीं करना चाहता था, इसलिए चुपचाप चला आया। बाहर निकलते हुए उसने जमादार से कहा—“सन्तरी जी ! देखते हो, इसका रंग एकदम कितना पीला पड़ गया है ?” जमादार ने ऐसे ही हुँकारा भरा और चला गया।

असाधारण घटना होते हुए भी, सम्भव था कि जग्गू इस बात को भूल जाता, लेकिन इस घटना के चौथे ही रोज़ फिर ऐसा हुआ। उस दिन आकाश पर बादल घिरे थे। पानी टपक तो नहीं रहा था, तो भी ऊपर जल-सने बादल जब आपस में टकराते तो ‘गरड़-गरड़-गड़’ करके बिजली इतनी तेज़ी से कौंधती कि आँखें चुँधियाने लगतीं। सावन की पहली बरसात अपने पूरे दल-बल और यौवन के साथ आ रही थी।

जग्गू अपनी गश्त पर था। तभी ग्यारह नम्बर की कोठरी

से उसे चीखने की आवाज़ आई। वह एकाएक उधर खिंचा चला गया। उसने देखा—जुम्मा किवाड़ की सीखों को अपने दोनों हाथों से पकड़े खड़ा है। उसकी आँखें चौपट खुली हैं। अब भी वह उसी तरह काँप रहा था, उसी तरह उसके ओठ और नथुने फड़क रहे थे। जैसे ही सामने बिजली चमकती वह चीख-चीख उठता। अपने दोनों हाथों से पकड़ी हुई सीखों को जोर से भिभोड़ता। दाँत पीसता और उसके मुँह से भाग-सी बहने लगती। पच्चीस तीस सैकिंड में वह दो-तीन बार चीखा। जगगू अब तक खड़ा देखता था। वह और सह नहीं सका। उसने आगे बढ़कर उसके हाथ पकड़ लिए—वह वर्क की तरह ठण्डे थे। जगगू ने पुकार कर कहा—“जुम्मा ! क्या हो रहा है तुम्हें ?”

तभी आसमान में जोर से बिजली चमकी। एक भयंकर गर्जना के साथ सारे अहाते में चका-चौंध पैदा हो गई। जुम्मा जोर से चीखा। वह आँखें फाड़े उन काले बादलों के पीछे कुछ देखने की चेष्टा कर रहा था। जगगू को ऐसा लगा मानो उसकी आँखें फट जायँगी। वह अपने दाँतों से अपने ओठ, जोभ सब कुछ चबा डालेगा। जुम्मा की यह हालत देखकर जगगू स्वयंघबरा-सा गया। जुम्मा के चेहरे पर एक भीषण आतंक छाया हुआ था, किसी महान् भय से उसका रंग उड़ गया था।

जगगू ने हाँक लगाई—“नम्बरदार, ओ नम्बरदार !”

जब जमादार आ गया तो जगगू ने कहा—“आज इसे फिर कुछ हुआ है। दरवाजा खोलना ज़रा !”

जमादार भिभका। आधी रात के समय वह जुम्मा-जैसे कैदी को खोल नहीं सकता था। “अगर वह भाग जाए तो...!” जमादार ने पूछा।

“वह भागेगा नहीं। उसे देखते नहीं हो !” किसी नम्बरदार

के इतना कह देने पर भी जमादार दरवाजा खोला नहीं करते, लेकिन जग्गू की बात को वह टाल नहीं सका। उसके स्वभाव से वह भली-भाँति परिचित था। पर दरवाजा खुलने की आहट पाते ही जुम्मा बेतहाशा बाहर की ओर भागा—मानो कोई पागल हो। तभी जग्गू ने उसे अपनी बलिष्ठ बांहों में जकड़ लिया। जमादार घबराया-सा इधर-उधर देखने लगा। जग्गू ने कहा—“देखते क्या हो, इसे पकड़ कर अन्दर ले चलो !”

दोनों बड़ी मुश्किल से उसे अन्दर लेजा पाए। जग्गू ने उसे लिटा दिया, लेकिन वह अभी तक छूटने के लिए छटपटा रहा था। उसकी यह हालत देखकर जग्गू का जो दया से भर आया। परन्तु वह कर क्या सकता था। जमादार तो चला गया था, पर जग्गू अभी उसे थामे ही था। उसकी छाती मलते हुए उसने कहा—“तुम्हें क्या हुआ है ?”

अब तक उसकी आँखें अपलक थीं और चौपट खुली आँखों से वह बाहर घिरे बादलों को अँधेरे में देखने की असफल चेष्टा कर रहा था। जग्गू की आवाज़ में जैसे उसे कोई आकर्षण जान पड़ा। उसकी आँखें एकाएक जग्गू के उदार चेहरे पर फिर गईं। जग्गू ने देखा, उसके होठ कुछ कहने को थिरक रहे हैं, लेकिन जैसे किसी ने उन्हें अंकड़ा दिया हो और वह बोल न सक रहे हों—ऐसी विवशता से उसके चेहरे पर लाचारों के भाव झलकने लगे।

“गरड़, गरड़-गड़ !”

बाहर फिर बिजली चमकी और सारी जेल गूँज उठी। तभी जुम्मा इतने जोर से चीखा कि कान फटने लगे। जग्गू ने पास पड़ी घड़ी से मिट्टी के सकोरे में थोड़ा पानी उँडेली और उसके होठों पर बूँदे टपकाने लगा। पाँच-सात बूँदों के बाद जुम्मा

ने ओठों पर जोभ फेरी और एक ठण्डी साँस ली। जुम्मा के चेहरे पर जो त्रिषाद और आतंक था, उसकी झलक मिट गई। जग्गू को इससे बहुत कुछ सान्त्वना मिली और इसी भाव से उसने अपना प्रश्न फिर दोहराया—“क्या हो रहा था ?” इसके साथ ही उसने पूछा--“अब जी कैसा है ?”

जुम्मा के दिमाग का बोझ जैसे आँसुओं की राह वह निकला था। गला साफ करते हुए वह बोला—“दादा ! तुम कब से यहाँ हो !”

जग्गू ने इसका कोई उत्तर न देते हुए उससे फिर पूछा—
“तुम्हारी तबियत तो अब अच्छी है न !”

“हाँ, अब अच्छा हूँ। अब कुछ नहीं, सब ठीक हो गया है !” ज़मीन की ओर ताकते हुए उसने कहा। जग्गू अभी उसकी आँखों में कुछ भाँपने की चेष्टा कर ही रहा था कि वह फिर बोला—“पता नहीं क्या होता है, लेकिन तुम मेरी इतनी फिक्र क्यों करते हो, जग्गू !”

पानी के दो-चार घूँट पीने से जुम्मा की तबियत बिलकुल हरी हो आई थी। बाहर ड्योढ़ी के पहरेदार ने टन-टन-टन तीन बजाये। जग्गू ने उसे कंवल पर लिटाते हुए कहा—“जुम्मा भाई ! तुम्हें क्या किसी चीज़ से डर लगता है ?”

— x —

तब तो जुम्मा नहीं बोला, लेकिन उसी दिन दोपहर के समय जब जग्गू ऐसे ही उसके पास आकर बैठा तो वह कहने लगा—“जग्गू दादा ! मुझे लगता है, जैसे अब मैं जी नहीं सकूँगा। सरकार ने तो मुझे फाँसी की सज़ा नहीं दी, पर इस जेल से मैं जीते-जी छूट सकूँगा, ऐसा कुछ दीखता नहीं।”

जग्गू ने उसके चेहरे पर गहरी निराशा का एक सोया हुआ चिह्न अंकित पाया। उसकी इस मुद्रा ने जग्गू के दिल में उसके प्रति प्यार और अपनत्व की भावना तीव्र कर दी। अपनों-की-सी आवाज में उसने कहा—“क्यों पागलों-सी बातें करते हो। तुम्हें कुछ रोग हो गया है। डॉक्टर को दिखाओ। मैं भी कहूँगा उससे !”

“नहीं दादा ! रोग-वोग कुछ नहीं। तन टूटता तो जी छूटता, मेरा मन टूट गया है। जग्गू, यदि तुम जानते कि चमकती बिजली को देखते ही मुझे क्या हो जाता है—तो तुम भी मेरे जीने की आशा छोड़ देते।” जुम्मा ने गहरी साँस छोड़ते हुए कहा।

“तो भी तुम्हें हुआ क्या है ?”

“सच पूछते हो नम्बरदार ! मुझे रात को बहुत डर लगता है। मुझे ऐसे लगता है—जैसे एक आँख—चौपट खुली—मुझे खा जाना चाहती है ! चमकती बिजली में वह खुलती है, उसकी गरज के साथ जैसे वह मुझ पर धधकते अंगारे बरसाती है। एक अजीब तरह की किरणें उसमें से निकलकर मेरे समूच शरीर को जकड़ लेती है। मैं हिलना चाहता हूँ, हिल नहीं सकता। बोलना चाहता हूँ, बोल नहीं सकता। सब-कुछ देखता हूँ—लेकिन मैं अपने-आपमें नहीं रहता। एक खौफनाक आँख—वह आँख—वह आँख...!” और तभी जुम्मा के चेहरे पर एक भीषण आतंक छा गया। उसके चेहरे पर हवाइयाँ उड़ने लगीं। वह एकाएक सिहर-सा उठा, तड़प-सा गया !

जग्गू ने उसे सान्त्वना देते हुए कहा—“घबराओ नहीं, घबराओ नहीं। अब तो बिजली नहीं चमक रही !”

“बिजली तो नहीं चमक रही, नम्बरदार !” जुम्मा ने एक

ठण्डो आह भरी, “लेकिन उसकी कल्पना से हो मैं काँप उठता हूँ। मेरे ऊपर एक अजीब तरह की वहशत छा जाती है ! कभी-कभी तो मुझमें इतना जोर आ जाता है कि इन सीखचों तक को अपने दाँतों से काट देना चाहता हूँ। जग्गू दादा ! वह आँख, जो मुझे सदा घूरा करती है, और किसी की नहीं, मेरी अपनी बीबी की है ?”

“बीबी की आँख !” जग्गू ने विस्मित होकर पूछा।

“हाँ, बीबी की आँख ! सुनो, तुम्हें मैं उसकी बात बताऊँ। मेरा ब्याह दादी ने बचपन में ही कर दिया था। सोलह बरस का था मैं कुल, जब सकीना से मेरा निकाह हो गया। वह भी तब मुश्किल से दस-ग्यारह की रही होगी। निकाह किस गारज से किया जाता है, ब्याह किसे कहते हैं—इन बातों को तो मैं थोड़ा-बहुत समझता था, लेकिन बीबी की भी परख की जाती है, इधर मेरा कभी ध्यान भी न गया था। ब्याह की मुझे खुशी चढ़ी थी। जिस रोज़ सेहरा बाँधकर मुझे घोड़ी पर चढ़ाया गया तो मैं फूला न समाया। मुझे चाव था कि मेरी भी एक बीबी आयगी—एक औरत जो उसी तरह मेरे पाँव दबाया करेगी, जैसे मेरी भाभी बड़े भैया के दबाती है।

“शहनाई की आवाज़, कवाब और मिठाइयों का जायका, घर वालों की देख-सम्हाल, यार-दोस्तों की चुहल-बाजियाँ, बारातियों के गुलछर्रे—इन सबमें मैं इतना खोया कि मैं सकीना पर अनजाने ही रीझ गया। दो बरस बाद जब हमारा गौना हुआ और उस रात जब उसने मेरे पाँव छुए तो मैं नाच उठा। मुझे ऐसा लगा, जैसे मुझे जन्नत मिल गई हो।

“दिन बीते, रातें भी !

“तभी हौले-हौले मुझे सकीना के प्रति आकर्षण घटता दीखने लगा। मुझे उससे वह पहला-सा लगाव न रहा। इसका सबसे बड़ा कारण था, उसकी सूरत—वह सुन्दर न थी। साधारण स्त्रियों जैसी भी नहीं। पता नहीं, कब मेरी दादी ने यह रिश्ता ठहराया था, नहीं जानता तब वह और मैं पैदा भी हुए थे या नहीं। उसी दिन देखे-भाले रिश्ते की डोर में हम जकड़े गए थे। हाथों की मेंहदी का रंग और उन दिनों की मस्ती उतरते ही मुझे सकीना बुरी-बुरी-सी लगने लगी। मैं सोचता—‘मेरे लिए क्या यही एक औरत रह गई थी?’

“इसके अलावा उसकी एक और बात मुझे बहुत खटकती थी। वह हृद् से ज्यादा वहमपरस्त थी। कब्रों, खानकाहों पर उसे बहुत ज्यादा विश्वास था। पीर-फ़कीरों की तो वह मुझसे ज्यादा इज्जत करती थी। नमाज़ की इतनी पावन्द कि क्या मज्माल जो कभी भी चूक जाये। रमज़ान का महीना तो उसके लिए जैसे एक नेमत होता। कितनी तमन्ना, लगन, श्रद्धा और प्रेम के साथ वह रोज़े रखती—सच कहता हूँ, नम्बरदार अल्लाहपाक की ज़ात में इतना विश्वास रखने वाली औरत दुनिया में मैंने नहीं देखी थी, लेकिन मुझे इससे चिढ़ थी। हट्टे-कट्टे पीरों की सेवा मुझे अस्व-रती थी। इतना अन्ध-विश्वास मुझे भला न लगता।

“और फिर यदि वह सुन्दर होती तो सम्भव था, मुझे वह इतनी बुरी न लगती। उसके इस स्वभाव ने जले पर नमक का काम दिया। अब मैं जब कभी भी उससे बात करता तो जली-कटी-सी सुनाता। उसके लिए जैसे मैं एक बहुत ही चिड़चिड़ा आदमी बन गया। मेरा खयाल था, इससे शायद उसकी वहम-परस्ती में कमी हो जायगी। पर हुआ इससे उलटा। एक रोज़ मेरी बड़ी भाभी ने पूछा—‘आजकल बड़ी मोमन बनी जा रही हो!’”

‘क्या करूँ, बहना ! मालूम होता है परवरदिगार आज-कल इस लौंडिया को भूल गया है । मियाँ हरदम खफा-खफा से रहते हैं । अपनी इस इबादत से मैं उसकी रहमत पाना चाहती हूँ !’ उसने इतना कहा और मस्जिद को चली गई । मैंने सुना तो जल-मुन गया । मुझे उस पर बहुत गुस्सा आया ।

“इन सब बातों का फल यह निकला कि मैं एक और लड़की की ओर खिंचने लगा । वह हमारे पड़ोस में ही रहती थी—सुरैया नाम था उसका । कोई परी तो न थी वह, तो भी सकीना से हजार दर्जे बेहतर—ओह, परवरदिगार ! सकीना के लिए मैं ऐसे शब्द इस्तेमाल कर रहा हूँ—पनाह !”

जुम्मा थोड़ी देर रुका । गला साफ़ करते हुए फिर बोला—“हाँ, तो नम्रदार ! सुरैया से मेरा इतना लगाव बढ़ गया कि मैंने चाहा उससे निकाह कर लूँ । कमाता मैं काफ़ी था, गाँव-भर में सबसे फुर्तीला जवान था, इसलिए किसी को मुझे अपनी लड़की देने में कोई आपत्ति हो नहीं सकती थी । फिर हमारे यहाँ, तुम जानते हो, दो बीबियाँ तो आम लोग रखते हैं, लेकिन सुरैया के बाप ने कहा—‘देखो भाई जुम्मा ! सुरैया को तुम्हारे-जैसे के हाथ सौंपने में हमें कोई एतराज नहीं । पर हम उसका रिश्ता किसी ऐसी जगह करना चाहते हैं, जहाँ उसे सौतिया डाह की आग में जलना न पड़े ।’

“मैंने उसके बाप की बहुतेरी मिन्नत-समाजत की, बहुतेरा कहा कि मैं सुरैया को आँख की पुतली की तरह रखूँगा, लेकिन वह किसी तरह नहीं माना ।

“इतना होने पर भी मैं सुरैया को पाने का लोभ त्याग न सका । सुरैया की ओर मैं जितना आसक्त हो रहा था, सकीना की ओर से उतना ही विरक्त । एक की सूरत मुझे अपनी ओर

खींचती, दूसरी को परे धकेलती। और सकीना का यह हाल था कि जहाँ अल्लाह में उसका विश्वास बढ़ता गया, वहाँ उसकी सेहत दिन-प्रतिदिन गिरने लगी। रंग उसका बिलकुल जर्द पड़ गया, आँखें अन्दर धँस गईं, गाल पिचक-से गए। उसके लिए चलना मुहाल हो उठा। इतना होने पर भी उसने खानकाहों पर फूल चढ़ाने नहीं छोड़े। हर रोज़ बिना नारा वह जाती और मिन्नतें मान आती। अपने पीर की सेवा में उसने तन-मन एक कर दिया।

“जब सुरैया के बाप ने पहली बीबी के होते मुझे अपनी लड़की देने से इन्कार किया था तो मेरे जी में आया कि सकीना का गला घोट दूँ या कभी धोखे से विष खिला दूँ। एक बार मैं कुएँ पर बैठा था और वह खाना लेकर आई तो मैं उसे कुएँ में धकेलने भी लगा, लेकिन अच्छे घर में परवरिश पाने के कारण मेरे हाथ ऐसा कर नहीं सके। अब सकीना की यह हालत देखकर मुझे अपनी इच्छा पूरी होने की आस बँधने लगी। सच मानना नम्बरदार ! उसका शौहर होते हुए भी मैंने उस रोज़ अल्लाह से दुआ माँगी कि इस नेकबख्त से पीछा छुड़ा।

“अल्लाह इतनी जल्दी दुआ कबूल करता है, मुझे ऐसा गुमान भी न था। सकीना की उस गिरती सेहत ने उसे चरपाई पकड़ने पर विवश कर दिया। कोई पन्द्रह-बीस रोज़ वह चारपाई से एक होकर लेटी रही। गाँव के हकीम थे—बूढ़े खिज़र। उन्होंने उसकी दवा-दारू भी की, लेकिन किस्मत ने साथ न दिया।

“सावन की पहली बरसात थी और हम लोग गल्ला समेटकर छज्जे के नीचे बँठे हुक्का पी रहे थे तो बड़ी भाभीने अन्दर से हाँक लगाई—अरे ओ जुम्मा ! आइयो तो ! मैं अन्दर गया, सकीना दम तोड़ रही थी। उसकी इस लम्बी बीमारी में मैं मुश्किल से दो-तीन बार ही उसे देखने गया हूँगा। मुझे देखते

ही उसकी आँखों में आँसू उमड़ आए। भाभी बोली—‘अब यह न बचेगी, दो-चार मिनट इसका जी बहला दे !’ और वह बाहर चली गई।

“ मेरे पास आओ ज़रा !”—यह शब्द उसने कुछ इतने आकर्षक ढंग से कहे कि मैं बरबस उसकी ओर खिंचा चला गया। उसने मुझे चारपाई पर बैठने का इशारा किया। एक तो वह पहले ही बदसूरत थी, इस पर बीमारी ने उसे और खौफनाक बना दिया था। तो भी, न जाने क्यों, उस दिन मेरे दिल में उसके लिए प्यार उमड़ने लगा। नहीं जानता, उसकी सच्ची श्रद्धा की प्रतिक्रिया थी, या उसके अल्लाह की इनायत। उसने मेरा हाथ अपने हाथ में पकड़ते हुए कहा—‘मियाँ ! उम्र-भर तुमने मुझे प्यार नहीं किया। क्या अब भी मुझसे नफरत करते हो।’

“ एक तो वैसे ही आज मुझे इसकी इस हालत पर रहम आ रहा था, दूसरे मैंने सोचा कि यह मर रही है, अन्तिम समय में इसकी रूह को क्यों बेचैन करूँ। मैंने उसका हाथ दबाते हुए कहा—‘ना मेरी रानी ! ऐसा नहीं कहा करते, मैं तुम्हें सच्चे दिल से चाहता हूँ। इधर काम से फुरसत नहीं मिली, तभी तुम्हारी संवा नहीं कर सका। इसका रंज तुम मेरे दिल से पूछो।’ उसके चेहरे पर खुशी की लहर दौड़ गई। भावावेश में उसकी साँस तेज चलने लगी।

“ तुम घबरा गई थीं, सकीना ! ” मैंने पूछा।

“ नहीं, मेरे अच्छे मियाँ, मैं अब बहुत खुश हूँ। तुम मुझे सच्चे दिल से प्यार करते हो, इससे बढ़कर और किसी औरत के लिए और खुशी की क्या बात हो सकती है ! लेकिन... ! ” कहते-कहते वह एकाएक रुक गई। थोड़ी देर ठहरकर वह फिर बोली—लेकिन, मेरे प्यारे ! अब मैं मरूँगी। मेरे पीर ने मुझे बताया था

कि जिस रोज सावन की पहली बरसात होगी, उसी रोज मैं मर जाऊँगी !’

“ ‘पीर-पीर-पीर !’ मैं दिल में एकाएक जल-भुन उठा। अभी-तक इसका वहम वैसे ही बने हैं। मरने की बात पीर जानते हैं, तो खुद किस काम के लिए है; पर मैंने उसे कुछ कहा नहीं। उसकी मृत्यु की बात सुनकर मुझे कोई दुःख भी नहीं हुआ। इसमें संदेह नहीं कि मैंने उससे कहा था कि मैं उसे सच्चे दिल से प्यार करता हूँ, तो भी सत्य यह है कि मैं तब भी चाहता था कि वह मर जाय और मैं सुरैया से निकाह कर सकूँ। मैंने अपने दिल की सब बातें दबाकर कहा—‘पगली छिः पगली ! इन पीरों को क्या पता है कि कौन कब मरेगा ?’

“ ‘नहीं मेरा पीर कभी गलत नहीं कहता। उसने आज तक कभी कोई गलत बात कही ही नहीं। उसने बताया था और सच ही मैं आज अनुभव कर रही हूँ कि अब मैं मर जाऊँगी। जैसे ही बाहर बिजली चमकेगी, जैसे ही गरड़-गड़ की आवाज मेरे कानों में पड़ेगी, तभी मैं मर जाऊँगी, तभी मेरी रूह अल्लाह के पास पैरों को छूने के लिए बैचैन हो उठेगी।’

“ ‘न मेरी रानी ! ऐसा न कहो, फिर यह तुम्हारा प्यारा मियाँ किससे प्यार करेगा ?’—मैंने साफ झूठ कहा, लेकिन उसका साफ दिल मेरे दिल की बुराई को भाँप नहीं सका, मुझे तसल्ली-सी देते हुए वह बोली—‘घबराओ नहीं मेरे प्यारे, मेरा पीर बहुत पहुँचा हुआ है, उसके हाथ में बड़ी करामात है। उसने कहा था कि जब तुम मरने लगोगी तो तुम्हारा मियाँ तुमसे प्यार करने लगेगा तब मैंने उससे कहा — मेरे मरते वक्त उसके प्यार का मुझे क्या फायदा होगा ? तो जानते हो मेरे प्यारे ! उसने फिर

मेरे लिए दुआ की। मेरे लिए अल्लाह से एक नई ज़िन्दगी माँगी। ओह ! कितना अच्छा है मेरा पीर !’

“नम्बरदार ! इतना कहकर थोड़े देर के लिए वह चुप हो गई। मैं उसे लगातार देखता ही रहा। उसकी इस बात पर मुझे थोड़ी हँसी भी आई, लेकिन मैं चुप रहा। तभी वह फिर बोली—‘तुम मुझसे बहुत प्यार करते हो न !’

“‘हाँ, बहुत !’ मैंने फिर झूठ बोला।

“‘ठीक ही तो कहता था मेरा पीर, मरते वक्त तुम मुझसे प्यार करने लगोगे। उसकी बात गलत हो ही नहीं सकती। उसकी दूसरी बात भी गलत नहीं होगी !’

“‘सुनो मेरे प्यारे ! अब मैं मर जाऊँगी। लेकिन तुम्हें कहा न मैंने, मेरे पीर ने मेरे लिए एक नई ज़िन्दगी माँगी है। यह देखो, इधर मेरे सिरहाने के नीचे—यह तावीज़ देखते न हो, यह मुझे फिर ज़िन्दगी बख़्शेगा। मैं दोबारा जी उठूँगी !’

“मैं दिल में एक बार हँसा—तावीज़ से दोबारा जी उठेगी। मेरा हाथ अपने सीने पर रखती हुई वह बोली—‘मेरे प्यारे भैया ! पीर ने कहा था, यदि तेरे मरने के बाद तेरा शौहर सच्चे दिल से यह तावीज़ तेरे जिस्म पर फेरेगा तो तू दोबारा जी उठेगी। बोलो मेरे प्यारे ! क्या तुम ऐसा करोगे ? देख रहे हो यह तावीज़, मेरे जिस्म के जिस-जिस हिस्से में तुम इसे छुआ-ओगे, उसीमें जान पड़ जायगी। मेरे पीर की बात कभी गलत नहीं हुई। बोलो ऐसा करोगे क्या ?’

“इसके सिवा कि—‘क्यों नहीं मेरी प्यारी...’ मैं और कह भी क्या सकता था। मैंने कहा और अपने प्यार का बिश्वास दिलाने के लिए मैंने अपना हाथ उसके सीने पर दबा दिया। उसने सुख की साँस छोड़ी और कहा—‘अच्छा, तो मैं थोड़ी देर
७०]

के लिए तुमसे जुदा होती हूँ । देखो, मेरे प्यारे ! देर न करना । जैसे ही मेरा साँस उखड़े और दिल की धड़कन बन्द हो जाय तो यह तावीज मेरे मुँह पर फेरना—अच्छा मेरे प्यारे—अलविदा !—तभी बाहर बिजली चमकी । ‘गरड़ गड़’ एक भयंकर गूँज पैदा हुई । सकीना चीखी—‘खुदा हाफिज़’ इसके साथ ही उसने ठण्डी आह छोड़ी और वह इस संसार में न थी । मैंने उसके दिल से कान लगाया, वह सो गई थी । उसके सिरहाने के तले से मैंने वह तावीज उठाया । उसे छूते ही मेरा हाथ काँप उठा । मैंने सोचा—‘क्या सच हो सकीना दोबारा जी उठेगी ?’ मुझे इस पर विश्वास नहीं आया । यह कभी हो ही नहीं सकता । वह स्वार्थी पीर इसे अपने लाभ के लिए बहकाता रहा है । जाने कितने पैसे बटोरे होंगे उसने इससे । मेरे दिल में तभी सुरैया का खयाल आया । सकीना—सकीना अब नहीं है, अब तो उसके बाप को कोई भिक्षक न होगी । एक जानवर से भी भी गिरकर अपनी बीदी की लाश के सिरहाने बैठे मैंने सुरैया से निकाह की सुन्दर कल्पना की ।

“तभी बाहर फिर जोर से बिजली कड़की । मैं चौंक पड़ा । मेरी निगाह एकाएक सकीना की लाश पर जा टिकी । मुझे ऐसे लगा मानो उसके ओठ अब भी कह रहे थे—‘देर न करना मेरे प्यारे, भूलना न । बिजली की चमक के साथ मेरे हाथ का तावीज भी चमक उठा । जैसे वह सकीना के शरीर से छूने को तड़प रहा हो ।

“तुम शायद आज इस बात को सच न मानो, लेकिन है यह सच । नम्बरदार ! मेरी आँखें मुझे धोखा नहीं दे सकती । मैंने जैसे ही वह तावीज उसकी दाईं आँख से छुआया, वैसे ही उस आँख का पर्दा उठा । आँख की पुतली इधर-उधर घूमने

लगी। मैंने कभी सुपने में भी इन तावीजों पर विश्वास नहीं किया था। उस दिन भी मुझे इन पर विश्वास न था। मैं तो केवल अपना वायदा पूरा करने के लिए ऐसा कर रहा था। मुझे यकीन था, वह अब न जियेगी, लेकिन जैसे ही उसकी दाई आँख का पर्दा उठा, मेरा हाथ लरज़ गया। मेरे शरीर से पसीना छूटने लगा। मैंने अपना हाथ पीछे को खींचा। चारपाई से दो कदम पीछे हट गया। वह आँख अब भी खुली थी। उसकी पुतली धूम-धूमकर इधर-उधर देख रही थी। पलक झपक-झपककर वह मुझे अपनी ओर बुलाती, लेकिन मैं—मैं अपनी जगह से हिला नहीं, वैसे ही खड़ा रहा। थर-थर काँपते उसे देखता भररह गया।

“मैं नहीं चाहता था कि वह दोबारा जी उठे। मैं उसे ज़िंदा नहीं देखना चाहता था। मैं सुरैया से निकाह करना चाहता था। मेरे और सुरैया के बीच में बद्रसूरत सकीना थी। वह मर गई है, मैं उसे दोबारा न जिलाऊँगा—हर्गिज़ नहीं, हरगिज़ नहीं! मैंने आवेश में आकर वह तावीज़ ज़मीन पर दे पटका। ऐसे जैसे बम फटता है, जैसे आसमान में बिजली कड़कती है, एक जोर का धमाका हुआ। घर के सब लोग भागे-भागे अन्दर आये। कमरे में धुआँ था। ‘क्या हुआ? क्या हुआ?’ सभी एक साथ बोल उठे।

“थोड़ी देर में धुआँ उड़ गया। मेरी भाभी सकीना की लाश के पास बैठी थी। मेरे भाई मेरे पास खड़े थे। मैं आश्चर्य-चकित बुत-सा बना था। मैंने देखा, सकीना की वह आँख अब भी खुली थी। पुतली तो न हिलती थी, लेकिन वह अपलक थी। मैं चीख उठा। भाभी ने दहाड़ मारी। भैया ने चादर उसके ऊपर ओढ़ा दी। भाभी ने कोशिश की कि उसकी आँख बन्द हो सके, लेकिन बहुत बार कोशिश करने पर भी वह आँख बन्द नहीं हुई—वह चौपट खुली आँख—मैंने उसे आखिरी बार देखा तो

वह मुझे घूर रही थी। मुझे ऐसा लगा, जैसे वह कहती थी—
‘बेवफा ! विश्वासघाती !’

“नम्बरदार ! वह आँख—मुझे अब तक घूरती है। वह अभी तक वन्द नहीं हुई। हर बार—जब कभी भी बिजली चमकती है, तो वह मुझे बुरी तरह घूरती है—वह आँख—चौपट खुली आँख...!”

जुम्मा यह कहता-कहता काँप उठा। उसका गला सूखने लगा। जगू ने पाम पड़ी घड़िया से उसे पानी पिलाते हुए कहा—
“धीरज धरो जुम्मा ! गुजरी बात को विसरा देना ही अच्छा होता है। अब जो तुम कर बैठे हो, उस पर पछताने से क्या लाभ ?”

“नहीं भाई जगू ! पछताने की बात नहीं है। अगर केवल इतना ही होता तो मैं शायद सब कर लेता, लेकिन यह आँख तो जैसे मुझे जलाकर ही छोड़ेगी। इसके डर से मेरा खून सूख गया है। गाँव में मेरे बराबर कुश्ती लड़ने वाला दूसरा न था। बीघों जमीन पर मैं अकेला हल फेर देता था, लेकिन आज देखते हो, यह हाँडियों का पिंजर !

“सुनो, सकीना की मौत के पन्द्रहवें दिन सुरैया के बाप ने भैया से मेरे लिए कहा। भैया ने मेरे साथ बात की। न जाने क्यों मैंने हाँ कर दी। तीन-एक महीने के बाद हमारा ब्याह भी हो गया। मैं खुश था कि मुझे अब मनभाती बीबी मिली है, लेकिन वह आँख—वह चौपट खुली आँख—उमने कभी भी मेरा पीछा नहीं छोड़ा। जब कभी भी मैं सुरैया के गल-बढ़ियाँ देकर उसकी मस्तानी आँखों को देखने की चेष्टा करता तो सकीना की वह खौफनाक आँख मुझे दिखाई देती। मैं चीख उठता।

“सुरैया पूछती—‘क्या हुआ है ?’ लेकिन मैं उसे क्या बता देता। यह बात भला किसी को बताने की थी। इस आँख

के कारण हम दोनों का जीवन दूभर हो गया। और इसका इलाज भी तो कोई न था।

“एक रात मैं सोया हुआ था। पास ही सुरैया सोई थी। सावन की पहली बरसात थी—आकाश पर बादल घिरे थे। मुझे कुछ गर्मी-सी लगी, मैं उठ बैठा। दूर-दूर तक अँधेरा फैला था। कुछ भी दिखाई न देता था। मैंने सुरैया की ओर देखा, वह आराम से सो रही थी। तभी दूर परे बिजली चमकी—‘गरड़ गड़’ मैं काँपा। मैंने देखा, वह बिजली नहीं थी, सक्कीना की आँख थी—वह चौपट खुली आँख। मैं जैसे पागल हो उठा। अपनी अँगुलियों को मैंने जोर से भींच लिया। मेरे दाँत आपस में टकराने लगे। मैं अपनी सुध-बुध खो बैठा था। मेरी टाँगें काँप रही थी।

“‘गरड़-गड़’ बिजली फिर चमकी, फिर चमकी और चमकती रही। भू ऊपर जैसे कोई जिन सवार हो गया था। इसी पागलपन में मैंने सुरैया का गला घोट दिया। वह चीखा, चिल्लाई—उसका सुन्दर चेहरा मैं देख रहा था, उसकी करुणाजनक आवाज मैं सुन रहा था—लेकिन मैं अपने आपमें न था, मुझे वह आँख बराबर पागल बना रही थी—पागल, और पागल से बढ़शी, खौफनाक दरिदा !

“मैंने सुरैया का खून कर दिया। इसी अपराध में मुझे दस साल की सजा हुई है। जज का खयाल था कि मैंने पागलपन में यह हत्या की है, इसीलिए मैं फाँसी से बच गया। लेकिन क्या यही पागलपन मुझे मार न डालेगा ? नम्बरदार ! वह आँख सदा मुझे घूरती है, जब बिजली चमकती है, तब तो मैं पागल हो उठता हूँ, मुझ पर कोई भूत सवार हो जाता है। तुम कहते हो डॉक्टर को दिखाओ, डॉक्टर के पास इसका क्या इलाज है।

क्या वह उस आँख को बन्द कर सकेगा ? आज उस आँख को मिट्टी के तले सोये दो बरस होने लगे हैं, मैं जानता हूँ— वहाँ अब उसका कोई निशान भी न होगा, लेकिन बादलों में कड़कती यह बिजली तो कभी मिट्टी की ओढ़नी न ओढ़ेगी । जग्गू भाई ! वह आँख मुझे न छोड़ेगी । जुम्मा ने ठण्डी साँस छोड़ी और फफड़ पड़ा ।

जग्गू और जुम्मा की आँखों में आँसू थे । कई मिनट तक दोनों बिलकुल चुप रहे । कोई हिला तक नहीं । जग्गू कैदियों के लिए एक देवता था, लेकिन जुम्मा को वह क्या कहे । वह अपना कर्तव्य निश्चित नहीं कर सका । वह जानता था कि यह एक वहम है किंतु वह भूत-प्रेत के किस्सों से अनभिज्ञ न था । वह कुछ भी नहीं सोच सका । अपने आँसू पीते हुए वह इतना ही कह सका— “जुम्मा भाई ! यह सब कर्मों का फल है । किसी के वस की बात नहीं । अब धीरज धरो और भगवान् का सुमिरन करके दिल से इस बात को निकालने का जतन करो !”

तुम ठीक कहते हो नम्बरदार ! जुम्मा सिसकते हुए बोला— “यह सब कर्मों का फल है, लेकिन वह आँख क्या कभी मुझे छोड़ेगी ? मुझे यकीन हो गया है मैं अब नबचूँगा ।

“ छिः छिः पगलों-जैसी बातें नहीं किया करते ! जग्गू उठता हुआ कहने लगा—‘यो दिल नहीं हारा करते । तुम तो जवान हो दो-चार दिन में सब ठीक हो जायगा !’ और वह चला गया ।

—×—

जग्गू ने जिन दो-चार दिनों में जुम्मा के सब ठीक होने की बात कही थी वह दो-चार दिन आये नहीं ।

एक रात— आकाश पर घने काले बादल घिरे थे । बिजली किसी पागल की तरह चीख रही थी । थोड़ी देर में मूसलाधार

वर्षा होने लगी। जग्गू इस समय दूसरे अहाते में सोया हुआ था, वर्षा की बूँदों से वह जाग उठा। तभी फिर जोर से बिजली कड़की उसे एकाएक जुम्मा का खयाल आया। अंभो उसकी ड्यूटी में एक घण्टा रहता था वह इस समय वहाँ नहीं जा सकता था, लेकिन उसने किसी की परवाह नहीं की। भीगती रात में वह भागता हुआ चक्कियों में पहुँचा। ग्यारहवीं कोठरी के बाहर जाकर उसने हाँक लगाई—“बोल जवान !”

उसे कोई उत्तर नहीं मिला। जग्गू ने दोबारा चीखकर कहा—“बोल जवान ! अब के भी वहीं खामोशी थी। जग्गू ने जमादार को बुलाया। दर्वाजा खुलवाया। जुम्मा मरा पड़ा था। जमादार ने सिर्फ इतना ही कहा—“थोड़ी देर हुई यहीं किसी कोठरी से चीखने की आवाज आ रही थी बीच-बीच में ऐसा लगता था, जैसे कोई दाँत किटकिटा रहा है। हमने समझा बिजली चमक रही है, बादल गरज रहे हैं, यह आवाज है।”

जग्गू का माथा झुक गया। जुम्मा के मुँह से अब भी भाग निकल रहे थे। उन्हें पोंछते हुई जग्गू ने उस पर चढ़ ओढ़ा दी। तभी बाहर पहरेदार ने टन टन ! करके चार बजाये। जग्गू को ड्यूटी शुरू हो गई थी। एक निस्सहाय कैदी की लाश को उसी कोठरी में छोड़ कर दिल पर पत्थर रखकर वह उठा। बारहवीं कोठरी के बाहर उसने अपनी पूरी शक्ति लगाकर कहा—“बोल जवान !” लेकिन उसकी आवाज ही नहीं निकली। तभी फिर बिजली चमकी “गरड़-गड़ और मुर्दों की-सी आवाज में तेरहवीं कोठरी के बाहर उसने कहा—“बोल जवान !”

इससे आगे वह जा नहीं सका। वहीं बैठ गया और वहाँ कब तक भीगता रहा—यह कौन जाने। लेकिन जमादार ने देखा, वह वहाँ बैठा-बैठा बड़-बड़ा रहा है—“बोल जवान .. बोल जवान !”
७६]

अहाता नं० दो

राजू जेल-भर की रौनक था, खुशी थी !

मुस्कानें और कहकहे उसके साथ चलते । वह जिधर जाता उधर हँसी बिखर-सी पड़ती, आह्लाद का एक सागर उमड़-सा पड़ता । दिन-भर के थक-माँदे कैदी उसे देखते तो खिल-से उठते । पसीने से तर उनके चेहरे पर एक आनन्द-लिप्त रेखा चमक-सी पड़ती और वह अनायास ही कह उठते—‘राजू ! तू तो हमारी जान है !’

और तब उनकी महफिल बैठती ।

अहाता नम्बर दो में एक बड़ी-सी बैरक थी । उनमें सौ के करीब कैदी आराम से तो नहीं, लेकिन गुजारे लायक तरीके से सो सकते थे । ६ बजते ही वार्डर उनकी गिनती करके अंदर बन्द कर देता और जब दूर परे का हैडवार्डर पूछता तो वह कह देता—
“सब अच्छा !”

गर्मी के दिनों में अन्दर चार-दीवारी में बन्द रहना कितना कष्ट-प्रद हो सकता है, इसका अनुमान वही लोग कर सकते हैं; जिन्हें कभी इस तरह बन्द रहना पड़ा हो । साधारण लोग बाहर खुले मैदानों में सोए हुए गर्मी की शिकायत करते रहते हैं । बड़ी दीवारों के पीछे, तपती जमीन के ऊपर इतने घिस-पिस के बैठे

कैदी को कितनी गर्मी लग सकती है यह कहने की नहीं, अनुभव करने की बात है। पसीने से नहाते हुए वे अपने फटे-से कंबल या चुभती चटाई पर पड़े रहते हैं और उनमें से बहुत-से हाथ से पंखा झलते हुए रात काट देते हैं। पिछले पहर जब गर्मी का जोर ज़रा कम हो जाता है तो—तो शायद, उनकी झपकी लग जाय चरना कैदी की रात खुली आँखों में बीत जाती है

राजू भी इसी तरह का कैदी था—लेकिन कैदी के इस दुःख-दर्द से बिल्कुल बे-ख़बर। उसने जैसे इन सब पर अपनी हँसी-खुशी का रौब जमा लिया था। बीस-बाईस के दम्याँन वह एक बाँका जवान था। कौम का जाट और जात का अहीर। गाँव में पानी के लिए झगड़ा हो गया। तू-तू मैं-मैं में जानों का विश्वास नहीं होता। बात भी करते हैं तो लाठी से। लाठियाँ चलीं, छड़ियाँ चलीं। दस-पाँच के सिर फट गए, एक मौत के घाट उतर गया और साथियों के साथ राजू भी फँसा। अदालत ने कह-सुनकर सात साल की सज़ा दे दी। घर वालों ने उसकी अपील भी कर रखी थी, लेकिन अभी तक कोई पेशी हो नहीं हुई।

सेहत उसकी अच्छी थी इसलिए जेल के बाबू ने उसके टिकट पर लिख दिया—‘लेबर हार्ड’ (मुशक्कत-सख्त) किंतु राजू पर इन बातों का कोई असर न था। वह उसी तरह हँसी-हँसी और खुशी-खुशी अपनी कैद के दिन काटता। अहाता नम्बर दो का हर कैदी उससे खुश था। आते जाते से मज़ाक करना उसकी आदत में शामिल था। एक बूढ़ा-सा कैदी था—रमजान। उसे बही जायः कहा करता—“सुनाओ बाबा, सुना है अब तुम्हारा ब्याह होने वाला है !”

दूसरे कैदी मज़ाक को पूरा करने के लिए जान-भूझकर

पूछते—“किसके साथ—कब ?”

राजू हँसता हुआ कहता—“मौत के दिन श्रीमतो कन्नदेवी के साथ !”

वह उसे यह भी कहा करता—“बाबा ! मरना तो तुम्हें है ही, फिर क्यों जेल की रोटियाँ नाहक खराब करते हो । मुझे दे दिया करो यह—मैं खा-पीकर पल जाऊँगा और—!” और थोड़ा मुसकराकर कहता—“तुम्हारी कन्न पर फूल चढ़ाया करूँगा !”

इसी तरह वह दूसरे कैदियों से भी मजाक करता—मीठा और सीधा मजाक । उसकी इस तबियत ने हर किसी को मोह लिया था । केवल कैदी ही नहीं, जेल के छोटे-मोटे अफसर भी उससे बात करके खुशी हासिल करना चाहते थे । वह जैसे सबका चहेता बन गया था ।

वह गा भी अच्छा लेता था और बातें बनाने सुनाने में बहुत होशियार । प्रतिदिन सायंकाल उनकी महफिल बैठती और गई रात तक वह ठण्डी न पड़ती । दो-चार हाथ सभी मारते, लेकिन इस महफिल की गर्मी राजू था । महफिल नाम के पिंजरे में राजू एक सुन्दर पत्नी था, जिसकी मीठी चहचहाहट केतले सभी की आवाज दब जाती थी । कभी-कभी वह लटक के साथ तान छेड़ता तो उसकी आवाज दूर-दूर तक सभी बैरकों में पहुँच जाती और वहाँ दुख-दर्द भुलाकर कैदी कान उधर कर लेते । कहते—“राजू को आज रंग चढ़ा है !”

और राजू इस रंग में इतना रँग गया था कि वह दुनिया-भर को इसी रंगमें देखने लगा । उसने अपने जीवनको मजाक समझा, अपने जीवन को मजाक समझा और इस दुनिया को हँसी-खेलका एक मैदान । वह प्रायः कहा करता—“जो हँसनहीं सकता, उसे जीना भी नहीं चाहिए” ! उसके लिए सुख-दुःख एक बराबर

थे। पर वह वेदान्ती न था। संसार के थपेड़ों ने उसे इस कदर सुन्न कर दिया कि अब वह इन दोनों में तमीज़ नहीं कर सकता था—और एक कैदी के लिए यह सबसे अच्छी चीज़ है। दिन-भर कड़ी-से-कड़ी मेहनत करने के बाद रात को बुरी-से-बुरी रोटी खाकर भी खुश रहना जेलखाने में एक अपवाद होता है। फिर राजू की तबियत केवल अपने लिए ही नहीं, औरों के लिए भी खुशी और आनन्द का कारण थी सारे कैदी उस पर रीझ गए थे और वह सब कैदियों से यां हिल-मिल गया था, जैसे उनका कोई सगा संबंधी हो !

— x —

बागों में फूल खिलते हैं, प्रकृति पर वसन्त छाता है, नदियों में यौवन आता है, लेकिन कुछ ही देर बाद खिले फूल मुरझा जाते हैं, वसन्त पतझड़ में बदल जाता है, नदियों का यौवन मिट जाता है और वह फिर उसी तरह रेत में लोटने लगती है।

मानव के चेहरे पर भी मुसकान खिलती है, उसके जीवन में भी वसन्त आता है, उसकी मन-सरिता पर भी यौवन छाता है—लेकिन उसी तरह मुसकान आहों में बदल जाती है, वन्सती-जीवन पतझड़ तले दब जाता है और जवानी पर बुढ़ापा छा जाता है !

राजू जेल के नियमों का अपवाद होते हुए भी प्रकृति के नियमों का अपवाद हो नहीं सका। वही राजू, जो कल तक मुसकानें और कहकहे बखेरता था, आज दुःख और दर्द की प्रतिमूर्ति बन गया। निस्सन्देह, अब भी वह, लोगों के साथ मजाक करता था, हँसता भी था, लेकिन उसके मजाक के पीछे

कैदी एक जलन का भास पाते, उसकी हँसी में एक करुणामय-रुदन निहित पाते। वह सब कुछ ऐसे करता, मानो वह इनका अभिनय कर रहा हो, मानो वह बँधकर—बिबश होकर ऐसा कर रहा हो !

इसका कारण था पाली !

पाली को एक कत्ल के अपराध में उम्र कैद हुई थी। आज तेरह वर्ष से वह जेल में था। इतनी देर तक जेल के शुष्क वातावरण में रहने के कारण उसकी तबियत बहुत चिड़चिड़ी हो गई थी। बात-बात पर उसे गुस्सा आ जाता, साधारण-सी घटना पर वह तमक उठता और खामखाह ही पास बैठे आदमी पर बरस पड़ता। उसका दिल खराब हो ऐसी बात न थी। वह अपने स्वभाव से मजबूर था। जिस नीरस और निर्मम वातावरण में उसे जीवन के तेरह वर्ष गुजारने पड़े थे, वह किसी को भी ऐसा बना सकता है, लेकिन कैदियों को इससे कुछ सरोकार नहीं। बड़े अधिकारियों की चाहे बुरी-से-बुरी भी बात सह जायं, अपने साथी कैदी की साधारण बात भी उन्हें जहरीले तीर-सी चुभती है।

पाली के इस व्यवहार और स्वभाव से सभी तंग थे। कई-कई तो खीझ उठते, लेकिन उसकी बड़ी आयु, और सफेद दाढ़ी का खयाल करके चुप रहते। फिर वह जानते थे कि पाली का दिल मैला नहीं।

जेल के कठोर और स्वार्थी जीवन ने उसे तंग-दिल भी बना दिया था। वह अपनी चीज पर अपना ही और पूरा अधिकार चाहता था। जिस तरह शिकारी अपने शिकार पर किसी और को निगाह नहीं रखने देता, इसी तरह वह भी कभी अपनी चीज पर दूसरे का अधिकार गवारा न करता।

जेल में आते ही राजू की भेंट पहले-पहल पाली से हुई। और वह कुछ इस तरह राजू से मिला कि वह दोनों एक दूसरे के बहुत निकट खिंच गए। पाली का जेल-जीवन एक भारस्वरूप था, उसे किसी से लगाव था न चाव। अपने में ही मस्त वह दिन काट रहा था, लेकिन राजू से बहुत हिल-मिल गया। दिन-दिन भर उसी के पास बैठा रहता और उससे गप्पें हाँका करता। राजू के लिए जेल एक नई चीज़ थी, एक अपरिचित स्थान। इसलिए किसी की इतनी सहानुभूति और स्नेह पाकर वह उधर दुलक गया। वह पाली की इज्जत करता था, दिखावे की नहीं—दिल से।

छोटा बड़े का मान करता था, बड़ा छोटे की देख-भाल। सम्भव था, ऐसे ही दिन कट जाते, लेकिन खिले फूल को मुर्झाना ही था, वसन्त का स्थान पतझड़ ने लेना ही था !

पाली को राजू की एक बात बहुत खटकती थी, वह थी—उसका स्वभाव। हर किसी से हँस कर बात करना, हर आये-गये से मज़ाक करना। पाली अपनी प्रकृति के वश राजू से इस स्वभाव में खीझ उठा। राजू का वह अपनी चीज़ समझता था, इसलिए उस पर किसी और का अधिकार उठे ग़वार नहीं था। इसलिए जब कभी भी वह राजू को किसी दूसरे से हँसी-ठिठोली करते देखता, तो बुरा मानता—विशेषकर जमादार अनूपसिंह के साथ जब वह राजू को उठते-बैठते देखता तो वह दिल-ही-दिल में जल उठता। पाली ऐसा करना न चाहता था, लेकिन अपने स्वभाव पर उसे काबू न था। अनजाने ही, बेअवज़ियार ही वह ऐसी धारणा कर बैठता।

देर हुई, जब जमादार अनूपसिंह ने पाली की शिकायत बड़े साहब से कर दी थी। फलस्वरूप बेचारे पाली को कई दिन चक्कियों में बन्द रहना पड़ा। उसे इस बात का दुःख न था कि

जमादार ने उसकी शिकायत की है। दुःख था तो इस बात का कि अनूपसिंह ने दोस्त होते हुए भी, अपने दोस्त की परवाह नहीं की और अपने स्वार्थ के लिए उसने मित्र-वात किया। पाली को इस बात पर बड़ा गुस्सा था। एक दिन इसी क्राधावेश में वह जमादार को मार डालने की भी सोच चुका था, किन्तु अपने-आप ही उसने अपना विचार बदल डाला।

विचार तो बदल गया, लेकिन अनूपसिंह ने उसके साथ जो बुराई की थी, उसे वह भूल नहीं सका। तब से लेकर अब तक वह बराबर उसकी आँख में रड़कता था। अनूपसिंह का ड्यूटी कई बार बदली और फिर वह अहाता नं० दो में आ लगा, लेकिन पाली के दिल में चुभा काँटा एक दिन भी न निकला।

आज, जब उसने राजू को उसी से हिलते-मिलते देखा तो उस काँटे की चुभन और भी तीखी हो गई। उसने अनुभव किया कि वह अब उसके दिल को भेदकर दूसरी ओर निकल जाना चाहता था। कई दिन तक उसने अपने दिल पर पत्थर रखा। उसे लगता मानो कोई उसकी छाती पर मूँग दल रहा है, लेकिन अब उसके लिए राजू का यह व्यवहार असह्य हो उठा और एक दिन वह तड़पकर बोल उठा “राजू!”

राजू ने उसकी भाव-भंगी देखी तो सहम-सा गया, लेकिन अपनी आदत से मजबूर वह मुसकराता हुआ बोला—“पाली दादा! आज यह वज्र कहाँ गिरेगा?”

पाली को राजू की यह बात तीखे तीर-सी चुभी। वह गुस्से से भर गया। कोई और होता तो शायद उसे पीट भी डालता, किन्तु राजू के भोले-भाले चेहरे को देखकर उसे अपना गुस्सा पी जाना पड़ा और फिर वह राजू से प्यार करता था। आँखों में धधकते

अंगारों छिपाते हुए वह बोला—“राजू ! तुम मेरे दोस्त हो, मैं तुम्हारा । क्या तुम पर मुझे कुछ अधिकार है ?”

राजू कुछ भी समझ न सका । आज अधिकार का भगड़ा कैसे आ खड़ा हुआ ? वह हैरान-सा रह गया । आश्चर्य-चकित चेहरे से बोला—“दादा ! अधिकार की क्या बात ! तुम हुक्म करो !”

पाली मानो एक तूफान दबाये बैठा था जैसे बाँध टूट जाने पर बेगवती नदी फूटकार के साथ बह निकलती है, वैसे ही वह बोला—“तो सुनो, मैं अनूपसिंह से तुम्हारा मेरा-जोल पसन्द नहीं करता । वह मेरा दुश्मन है, तुम मेरे दोस्त—दोस्त और दुश्मन में मेल-जोल नहीं हो सकता !”

जमादार अनूपसिंह से पाली के मन-मुटाव की बात राजू सुन चुका था और वह पाली के स्वभाव को भी अच्छी तरह समझता था, लेकिन उसका खयाल था कि वह बात आई-गई हो चुकी होगी । और फिर वह समझता था, जमादार से जो मैं मिलता हूँ, तो वह इसलिए तो नहीं कि मेरी इच्छा से पाली का अहित-चिन्तन हो । ऐसे ही जेल में आए-गए का मेला रहता है । मिल लिये तो मेला हो गया, चले गए तो भगवान् भरोसे । इस-लिए उसके दिल को कुछ दुःख-सा हुआ । वह कहना तो बहुत-कुछ चाहता था, लेकिन वह केवल इतना ही कह सका—“पर क्यों ?”

पाली को यह सुनने की संभावना तो थी, किन्तु वह इसके लिए तैयार न था । गुस्से के इसी आवेश में बोला—“तुम हम दोनों के दरम्यान में नहीं रह सकते । इधर या उधर—उम्हें जल्दी फैसला करना होगा !”

राजू कि कर्तव्य विमूढ़ खड़ा रह गया । अपने भले-बुरे की पहचान के साथ वह अपना रस्ता भी आसानी से चुन सकता

जमादार ने उसकी शिकायत की है। दुःख था तो इस बात का कि अनूपसिंह ने दोस्त होते हुए भी, अपने दोस्त की परवाह नहीं की और अपने स्वार्थ के लिए उसने मित्र-वात किया। पाली को इस बात पर बड़ा गुस्सा था। एक दिन इसी क्रोधावेश में वह जमादार को मार डालने की भी सोच चुका था, किन्तु अपने-आप ही उसने अपना विचार बदल डाला।

विचार तो बदल गया, लेकिन अनूपसिंह ने उसके साथ जो बुराई की थी, उसे वह भूल नहीं सका। तब से लेकर अब तक वह बराबर उसकी आँख में रड़कता था। अनूपसिंह का ड्यूटी कई बार बदली और फिर वह अहाता नं० दो में आ लगा, लेकिन पाली के दिल में चुभा काँटा एक दिन भी न निकला।

आज, जब उसने राजू को उसी से हिलते-मिलते देखा तो उस काँटे की चुभन और भी तीखी हो गई। उसने अनुभव किया कि वह अब उसके दिल को भेदकर दूसरी ओर निकल जाना चाहता था। कई दिन तक उसने अपने दिल पर पत्थर रखा। उसे लगता मानो कोई उसकी छाती पर मूँग दल रहा है, लेकिन अब उसके लिए राजू का यह व्यवहार असह्य हो उठा और एक दिन वह तड़पकर बोल उठा “राजू!”

राजू ने उसकी भाव-भंगी देखी तो सहम-सा गया, लेकिन अपनी आदत से मजबूर वह मुसकराता हुआ बोला—“पाली दादा! आज यह वज्र कहाँ गिरेगा?”

पाली को राजू की यह बात तीखे तीर-सी चुभी। वह गुस्से से भर गया। कोई और होता तो शायद उसे पीट भी डालता, किन्तु राजू के भोले-भाले चेहरे को देखकर उसे अपना गुस्सा पी जाना पड़ा और फिर वह राजू से प्यार करता था। आँखों में धधकते

जगा और वह एक सै नहीं, सभी से दूर हो गया। अब कभी किसीने उसें खुल कर बात करते नहीं देखा। उसने मौन तो नहीं धार लिया था, किंतु वह उतना ही बोलता, जितना उसके लिए अनिवार्य हो।

हर व्यक्ति का एक व्यक्तित्व होता है। मनोविज्ञान के वेत्ताओं का कहना है कि यह उसके स्वभाव में निहित रहता है। किसी का व्यक्तित्व नष्ट कर दिया जाय, तो वह बच नहीं सकता। पाली ने अनजाने में राजू के व्यक्तित्व का गला घोट डाला।

अपने स्वभाव को खोकर वह अपनी सेहत बनाये नहीं रख सका। प्रकृति की प्रतिक्रिया उसके जीवन में भलकी और हट्टा-कट्टा राजू दिन-दिन ढलने लगा। उसकी उठी हुई आँखें अंदर भँसने लगीं, उसके उभरे हुए गाल पिचकने लगे, उसकी बलिष्ठ भुजाएँ ढीली पड़ने लगीं और तनी हुई गर्दन अपने-आप झुकने लगी।

पाली ने राजू की यह हालत देखी तो घबराया। वह राजू को दिल से चाहता था—उसके लिए अपना जीवन तक दे डालने को तैयार। राजू को जवानी में बुढ़ापा आते देख वह उसी तरह घबरा उठा, जिस तरह पुण्य-पुनीत अतीत में भारत के वासी जीते जी अपने जवान बेटे की मौत सुनकर घबरा उठते थे। उसने उससे पूछा—“राजू भैया ! तुम्हें यह क्या हो रहा है ?”

वह कुछ बोला नहीं, चुपचाप खड़ा रहा। पाली के दिल में चिंता और दुःख का तूफ़ान उमड़ रहा था। बोला—“बोलते क्यों नहीं, मुझसे छिपाते हो !”

राजू के दिल में एक बार तो आया कि कह दे—“गर्दन पर छुरी रखकर बकरे से पूछते हो कि उसका खून क्यों सूख गया है।” लेकिन यह सोचकर कि इससे पाली का दिल दुखेगा,

उसने इतना ही कहा—“कुछ नहीं, तबियत कुछ अच्छी नहीं रहती, पेट में कुछ खराबी है।”

“डॉक्टर को नहीं दिखाया क्या ?” पाली ने पूछा।

“दिखाया तो नहीं, आज दिखाऊँगा !” राजू ने कहा और देखा कि पाली का चेहरा मुरझा गया है। इसलिए उसे खुश करने के लिए उसने एक कहकहा लगाया, एक बार जोर से हँसा। तभी पाली चीख उठा। उसने अनुभव किया कि राजू के अन्दर बैठा मौत का दूत यह हँसी हँस रहा है।

उसी रोज़ शाम के बक्त जब जेल का डॉक्टर दौरे पर आया तो पाली ने उससे कहा—“हुजूर ! राजू दिन-ब-दिन कम-जोर होता चला जा रहा है। अगर आप उसे जरा देख लें तो...!”

जेल के डॉक्टर कभी ऐसी बातों पर ध्यान नहीं दिया करते। साधारण कैदियों के दुःख-दर्द के साथ उन्हें कोई वास्ता नहीं होता। वह जो करते हैं, नौकरी समझकर करते हैं। बीमारी जब बढ़ जाय तभी वह किसी कैदी को बीमार मानते हैं—अन्यथा—“२४ नम्बर, २७ नम्बर की दवा पिला दो !” कहकर टाल देते हैं, लेकिन राजू ने उन लोगों को इतना मोह लिया था कि उसकी गिरती सेहत को सुनकर डॉक्टर के दिल में कहीं छिपकर बैठी सहानुभूति जाग उठी और उसके साथे पर साधारण-सी चिंता की रेखा खिंच गई। बोला—“क्यों, क्या हुआ है उसे ?”

“मैं क्या जानूँ, हुजूर ! पिछले कई दिनों से वह उदास और अनमना-सा रहता है। अहाते में सबसे तकड़ा जवान था, आज तो जैसे वह दूसरों के रहम पराजि रहा है !” पाली ने यह बात कुछ इतने दर्द के साथ कही कि डॉक्टर ने चिंतित मुद्रा से कहा—“चलो देखें तो उसे !”

राजू अभी-अभी काम से लौटा था। थकान के मारे वह चूर हो रहा था। सामने डॉक्टर और पाली को आते देखा, तो उठकर बैठ गया। बोला कुछ नहीं, बोल सकता ही नहीं था। डॉक्टर उसे रोज़ ही देखता था, लेकिन आज जैसे उसे वह बहुत ही कमजोर दीखा। कहने लगा—“क्या तकलीफ़ है, तुम्हें ?”

“कुछ नहीं, डॉक्टर साहब ! पाली दादा ज़रा मेरा खयाल बहुत करते हैं। इसीलिए उन्हें कुछ वहम-सा हो गया है ! कहने को तो राजू कह गया लेकिन, उसने स्वयं अनुभव किया कि वह सही बात को छिपा रहा है। डॉक्टर ने उसको नब्ज़ देखी। स्टैथिसकोप से छाती देखी, पर वह कुछ भी समझ न सका। बोला—“कल सुबह हस्पताल आना ! लो यह पर्चा—कल की तुम्हें छुट्टी है !”

राजू का रोग डॉक्टर के बस का न था। लाख जतन करने पर भी वह उसका रोग पहचान नहीं सके। तो भी डॉक्टर ने उसे हस्पताल में दाखिल कर लिया और उसको डेढ़ सेर दूध और आध छटाँक माखन लग्न दिया।

खुराक तो अब उसे मिलने लगी थी, उसे इस खुराक की ज़रूरत न थी। देहाती आदमी सूखी-सूखी खाकर भी अच्छे तकड़े रहते हैं। जेल के कष्ट उन्हें कुछ कमजोर ज़रूर कर देते हैं, लेकिन वह इनके सामने हारते नहीं। राजू ने भी इनका डटकर सामना किया था। केवल इतना ही नहीं, उसने कैदियों के लिए एक आदर्श स्थापित किया था। किंतु आज वह हौले-हौले ख़त्म हो रहा था। दूध और माखन उसके मरे व्यक्तित्व को दोबारा जीवित न कर सकते थे—न कर पाए। दो ही महीने में वह तकड़ा-जवान हड्डियों का ढाँचा-भर रह गया।

पाली ने एक बार रोकर उससे पूछा—“तुम्हें क्या हो रहा है ? क्या तुम्हें कोई गम है, मुझसे भी छिपाते हो !”

राजू ने पाली के प्रश्न का कोई उत्तर नहीं दिया । केवल एक बार अपनी अन्दर धँसी हुई आँखों से ऊपर आकाश की ओर देखा । पाली चीख उठा । उसने उसे गले लगा लिया । सिसकियों के बीच में बोला—“राजू ! कुछ तो बोलो । इस बूढ़े पर थोड़ा तरस खाओ !”

राजू बहुत कठिनाई से इतना कह सका—“दादा ! मेरा दिल आजकल बैठ-बैठा सा जाता है ।” उसकी आवाज़ फिर रुकी । गला साफ़ करते हुए बोला—“मालूम होता है, अब मैं और जी न सकूँगा !” राजू को अनुभव हुआ कि वह अब अपने को और सम्भाल नहीं सकेगा । ज़रा पीछे हटकर वहीं ज़मीन पर बिछे एक कम्बल पर बैठ गया । पाली भी उसी के पास बैठते हुए लड़-खड़ाती आवाज़ में कहने लगा—“न मेरे भैया ! ऐसी बात नहीं करते ! तुम मुझे अपना गम बताओ, मैं अभी ठीक कर दूँगा !”

राजू जानता था कि अब वह बात बताने का कोई लाभ नहीं । उसने कहा—“नहीं, दादा ! बात कोई भी नहीं !” अब वह और सह नहीं सका ! धधक उठा !

अहाता नंबर दो के उस कोने में दोनों प्राणी—एक बुढ़ापे में जीवन के दिन गिनता हुआ, दूसरा जवानी में मौत का आह्वान करता हुआ—बैठे थे । दोनों देर तक चुप बैठे रहे । सम्भव था, वह उसी तरह बैठे रहते, लेकिन तभी जमादार ने कहा—“गिनती कराओगे नहीं ?”

राजू ऐसे उठा मानो किसी कल का पुर्जा हो । पाली उसके पीछे हो लिया । जमादार ने कहा—“तिहत्तर-चौहत्तर !” और वह दोनों काली-काली शलाखों के पीछे थे !”

अगले दिन पैरेड थी। बड़े साहब और दारोगा हर सोम-बार को दौरा करने आते। सारा अहाता साफ़ कर दिया जाता। कैदी अपनी चमकती लोहे की बाटियों को आगे रखकर कतार में दीवार से सटकर खड़े हो जाते और जब साहब उनके पास से गुज़रता तो कोई सवाल करते। जिन्हें कोई सवाल न करना होता, वह चुप खड़े रहते।

राजू आज सूखे वृत्त के ठूँठ की तरह खड़ा था। साहब पास से गुज़रा तो वह चुप खड़ा रहा। पिछले कई सप्ताह से वह ऐसी ही कर रहा था। साहब ने उसकी ओर एक बार दयनीय दृष्टि से देखा। वह आँखें नीची किये उसी तरह खड़ा रहा। हिला नहीं। डुला नहीं। साहब आगे निकल गया। उसके पीछे दारोगा था।

दारोगा ने कहा—“राजू! तुम्हारी अपील नामंजूर हो गई है!”

सूखे पेड़ पर बिजली गिरी। उसने एक बार आँखें उठाकर दारोगा साहब की ओर देखा। इस अवस्था में राजू पर यह आग्विरी चोट थी। वह गिरने लगा, लेकिन पीछे दीवार थी। उसी के सहारे वह खड़ा रह गया! ऐसे, जैसे कोई लकड़ी खड़ी होत्रो है। उसका रंग विलकुल सफेद—बर्फ-सा हो गया! डॉक्टर ने नब्ज देखी। दिल की धड़कन बन्द हो जाने के कारण वह मर गया था!

पाली चीखा—“इसे क्या हो गया, हुजूर!”

डॉक्टर ने लाल-लाल आँखों से उसकी ओर देखते हुए कहा—“तुमने इसे मार डाला, पाली!” और उठकर जाने लगा। पाली इसका कुछ भी मतलब समझ नहीं सका। वह अनपढ़ आदमी समझ भी नहीं सकता था। रोते-रोते वह राजू की लाश से चिपट गया!

अहाता नम्बर दो में उस दिन किसी ने ग्याना नहीं ग्याया!

रसीला पत्थर

नीला कालिज की उन लड़कियों में से थी, जिनसे बात करने को लड़के उतावले से रहते हैं। लाख यत्न करके भी वह उससे घनिष्ठता प्राप्त करने का प्रयत्न किया करते, किन्तु नीला मानो आँखें खोलकर सो रही थी। सब-कुछ समझने हुए वह इस तरह रहती जैसे कुछ जानती न हो। बीसवीं शताब्दी के इन दिनों में, जबकि 'आज की लड़की' थोड़ा-सा मनुहार पाते ही उस आर जैसे दुलक-सी पड़ती है, नीला एक ऐसी चट्टान की तरह खड़ी था, जिससे लहरें टकराती तो हैं—लेकिन अपना माथा फोड़कर लौटने के बिना और कुछ कर नहीं पाती। डॉ० घोष का पीरियड पढ़ने के बाद लाइब्रेरी तक पहुँचने के लिए उसे बीच का लम्बा लॉन पार करना पड़ता तो मेंद पर खड़े सैकड़ों युवकों को निगाहें एक बार ही उस पर टिक जातीं, किन्तु उसके स्वभाव से परिचित होने के कारण कभी किसी ने उससे बात तक करने का साहस न किया था।

कालिज-टाइम से तीन-चार मिनट ही पहले वह आती और गुलाबों के झुरमुट में पड़े बैंच पर वह अकेली ही बैठी रहती। घण्टी बजते ही वह सीधी कमरे में आकर दाईं ओर के उस बैंच पर बैठ जाती, जहाँ दूसरी लड़कियाँ बैठतीं, क्लास में हाजरी के वक्त 'येस्सर' कहने के बिना उसे कभी किसी ने किसी से बात करते नहीं देखा। हाँ, एकध बार वह अपनी गर्ल फ्रेंड्स के साथ खिलखिला कर हँसी जरूर, लेकिन ऐसे ही, जैसे

किसी ने उसे ऐसा करने पर विवश किया हो, अन्यथा डेढ़ वर्ष के इस लम्बे काल में उसके मौन ने लड़कों को यह कहने पर मजबूर कर दिया था—“अजी, इसमें नखरा बड़ा है।” कुछ मनचले इससे भी दो क्रदम आगे बढ़ गए थे। वह कहते—“कभी किसी हमारे-जैसे आदमी के पल्ले पड़ गई तो पता चल जायगा। इतनी अकड़ भी किस काम की।”

इससे यह अनुमान करने वाले कि नीला एक खूबसूरत पत्थर थी, निश्चय ही गलती करेंगे। उसके इस व्यवहार से किसी को उसके नीरस होने का भास ही नहीं यक़ीन भी हो सकता है। कालिज की मासिक-पत्रिका “शशि” में उसकी कविताएं और गद्यगीत पढ़कर किसी को भी अपना विचार बदलने पर बाधित होना पड़ता। उसके गीतों से जैसे रस टपकता था, एक-एक पंक्ति मानो एक-एक जंजीर का रूप धार लेती और पाठक का मन जकड़कर रह जाता। उसकी कल्पना उसके चेहरे से कहीं अधिक सुन्दर थी।

और शायद इसीलिए रजनीकांत की धारणा थी कि नीला का दिल कभी प्रेम और प्यार से ख़ाली नहीं हो सकता। उसका विचार था कि नीला वह ज्योत्स्ना है, जिसे घनौने काले बादलों ने अपनी कुरूप भोली में समेट लिया है। उसके दिल ने नीला की उगमा सदा उस रस-स्रोत से दी थी, जिसके आगे किसी ने बाँध लगा दिया हो। यार-दोस्तों की महफ़िल में जब कभी भी कोई कह बैठता—“अजी, नीला की बात ही छोड़ो। खुदा ने मोम की मूरत में जान तो डाल दी, लेकिन दिल नहीं दिया।” तभी रजनीकांत कहता—“तुम नीला को समझ नहीं सकते।”

रजनीकांत यह बात कुछ इतने विश्वास के साथ कहता कि सभी समझने लगते कि वह सच ही नीला को समझ नहीं सके। वह जानते थे कि रजनीकांत नीला की ओर इतना खिच-

सा गया है कि आज इसे 'प्रेम' का नाम दिया जा सकता है। प्रायः वह उसके इस असफल प्रेम का मज़ाक भी उड़ाया करते। उससे ठिठोली करते हुए यहाँ तक कह जाते कि पत्थर के भगवान् कभी बोला नहीं करते। तो भी रजनीकांत की बात सुनकर वह कोशिश करते कि नीला नाम की इस पहेली को सुलझा सकें।

नीला को देखकर उन्हें एक खूबसूरत पत्थर का भास होता। उसके गीत पढ़कर वह अपने ओठों पर किसी सुखद-अमृत-रस का स्पर्श-सा पाते और सोचने लगते—“क्या शुष्क पत्थरों से भी रस टपका करता है?”

— × —

एक दिन—

दो साल बीतने को आ रहे थे। परीक्षा में मुश्किल से अढ़ाई—तीन माह रहते थे, लेकिन इंगलिश का कोर्स अभी खत्म न हुआ था। इसलिए डॉ० घोष ने इवनिंग-क्लासिज लेने शुरू कर दिए थे। उस बार सर्दियाँ भी कुछ लम्बी ही हो गई थीं। फरवरी के महीने में भी दिसम्बर का-सा शीत दाँतों को किटकिटा देता। और उस दिन शाम को तो कुहरा भी छा रहा था। सारे वातावरण में एक स्निग्ध-स्तब्धता-सी छाई हुई थी।

इस मौन को चीरते हुए साइकिलों की घण्टियाँ एकाएक बज उठीं और कालिज का वह सूना कम्पाउण्डर टार्चों की आड़ो-टेढ़ी प्रकाश-किरणों से झिलमिला-सा उठा। लॉन के परले कोने में लगा वह लैम्प कुहरे के कारण कुछ भी रोशनी न दे पा रहा था। इस 'शतियारे-फिटपुटे' में ही लड़के और लड़कियाँ इधर-उधर आ जा रहे थे।

कालिज-क्लॉक ने सात बजाए ही थे कि रजनीकांत ने दरवाजे के अन्दर पाँव रखा। कहीं प्रोफेसर अपना लैक्चर शुरू

न कर दे, इसलिए वह ज़रा जल्दी-जल्दी चल रहा था । तभी अचानक वह किसी से टकरा-सा गया । स्वभावतया उसके मुँह से दो शब्द बिखर पड़े—“ओह सारी ! क्षमा करना !”

तभी उसने देखा, वह टकराने वाला और कोई नहीं, नीला ही थी । वह अपने ध्यान में मस्त जा रही थी । ज़रा-सी ठोकर खाते ही वह गिर पड़ी । रजनी ने देखा तो वह बोल भी नहीं पाया । चाहता था कि अपने हाथ का सहारा देकर उसे उठा दे, लेकिन नीला ने अपने आस-पास परायेपन और दूरी की जो दीवार खड़ी कर रखी थी, वह एक बाधा-सी बन कर राह में अटक गई ।

नीला गिरी तो उसके हाथ से किताबें गिरने से आवाज़ हुई थी । तभी लड़कों की टार्चें एकाएक उस ओर घूम गई थीं—“क्या हुआ ?” “कौन गिरा ?” ऐसी कितनी ही आवाज़ें एक साथ निकल पड़ी थीं । टार्च की रोशनी में उन दोनों को देखकर क्लास-रूम की ओर बढ़ रहे उनके पाँच अनजाने ही रुक गए थे । आज उन्होंने एक ऐसी चीज़ देखी थी, जो केवल एक्सीडेंट (घटना) होते हुए भी बिलकुल निराली थी । लड़कों ने एक-दूसरे की ओर कुछ इस तरह देखा, मानो वह दूसरे को आँखों हाँ आँखों में कुछ कह देना चाहते हों ।

मुश्किल से पन्द्रह-बोस सैकिंड में ही यह सब-कुछ हो गया । रजनीकांत हक्का-बक्का-सा खड़ा था । वह किर्कतव्य विमूढ़ भी हो गया था । नीला भोंप-सी गई थी, तो भी उसने उठते हुए कहा—“कोई बात नहीं मिस्टर रजनीकांत !” और वहसाड़ी के पल्ले को झाड़ती हुई अपनी किताबें उठाकर चल दी । रजनी भी गर्दन नीची किये कमरे में दाखिल हुआ और चुपचाप सबसे अन्तिम बेंच पर बैठ गया ।

डॉ० घोष सात बजे से लेकर आठ बजे तक—एक घण्टा लैकचर देते थे। सिर्फ अपने कालिज में ही नहीं, बल्कि सभी कालिजों में उनके लैकचर की धाक थी। वह कुछ इतनी लगन और तल्लीनता के साथ कविता पढ़ाते थे कि किसी भी सुनने वाले का मन दूसरी ओर जा ही न सकता था। उनकी वह मधुर आवाज़, बंगाली होने की वजह से मोटा होने पर भी वह नज़ाकत और सबसे बढ़कर उनका वह पोपला मुँह, जो बोलते वक्त इतना गोल हो जाता था कि देखने वाला वरबस उधर खिंच जाता था। लेकिन आज दो-चार को छोड़ किसी को भी उनके लैकचर में रस नहीं आया। सभी आज दबे मुँह उस घटना की चर्चा कर रहे थे, जो कुछ ही देर पहले घटी थी और कनखियों से उन दोनों की ओर देख रहे थे, जो अभी आपस में भाड़ गए थे।

सतीश ने कहा—“आज तो पत्थर पिघल गया मालूम होता है !”

याकूब बोला—“रजनीकांत किस्मत का सिकन्दर है !”

लड़कों में ही नहीं लड़कियों में भी यही चर्चा थी। प्रीतम ने सूरजीत के कान में कहा—रजनीकांत की बात सुनी !”

सूरजीत बोल उठी—“तुम क्यों पढ़ती हो लोगों के झमेलों में। क्या तुम्हें रश्क...!” और तभी दोनों दाँतों के बीच में ही हँस दीं।

जैसे ही डॉ० घोष ने अपना लैकचर खत्म किया और लड़के जाने लगे तो उन्हें अपना उपरोक्त विचार बदलना पड़ा।

वराँडे में रजनीकांत खड़ा था कि नीला चुपके से वहाँ आई और केवल इतना कह कर कि—“चलते वक्त ज़रा ध्यान रखा करें, किसी को इससे नुकसान पहुँच सकता है !” चुपके से

चली गई ! हर किसी ने अनुभव किया कि नीला की आँखें धधकते आँगारे बरसा रही थीं ।

सब हैरान थे । यह नीला भी एक अजब पहेली है ! एक ऐसी पहेली, जिसे वह लाख जतन करने पर भी सुलझा नहीं सके । और सच ही नीला अन्तिम दिनों तक एक पहेली ही रहती यदि वह स्वयं ही अपनी पहेली सुलझा न देती ।

— x —

उपरोक्त घटना के ठीक पाँचवें दिन रजनीकांत जैसे ही अपने बिस्तर से उठा, डाकिये ने आकर एक लिफाफा उसे दिया । लिफाफे के ऊपर लिखा था—“एक्सप्रेस डिलिवरी”—रजनीकांत ने फार्म पर दस्तखत किये और उतावला-सा होकर लिफाफा खोलने लगा—“इस वक्त खत कहाँ से आ गया”—और तभी वह अत्यधिक गम्भीर हो गया । खत हिन्दी में बहुत ही सुन्दर अक्षरों में लिखा था और साफ़ पता लग रहा था कि लिखने वाला उस ‘सेक्स’ से सम्बन्ध रखता है, जिसे हम कोमलांगी कहते हैं । खत के अन्त में ‘नीला’ का नाम पढ़कर, खत पढ़ने की उसकी उत्सुकता आगे से कहीं अधिक हो गई ।

अपने गालों की अरुणाई को अपनी एक हथेली से छिपाते उसने पढ़ा, लिखा था—

“रजनी बाबू !

घनिष्टता के अभाव को अनुभव करते हुए भी आज मैं तुम्हें खत लिखने बैठी हूँ । मेरी फ़िम्क अब भी मेरी कलम को रोक-रोक लेती है, लेकिन अब जैसे लिखे बिना न रह सकूंगी । मैंने बहुत सँभाला था अपने आपको—बहुतेरी कोशिश की थी कि अपनी निधि को लुटने न दूँ, लेकिन अब यह बात मेरे बस से बाहर हो रही है !

तुम भूले नहीं होगे उस दिन को, जब पहले-पहल हमारी-तुम्हारी भेंट हुई थी ! उस दिन भी तुम बहुत घबराए हुए-से थे, शायद कालिज में पहला दिन था । दरवाजे में ही तब भी मेरी-तुम्हारी टक्कर हुई थी । अनजाने हम दोनों एक-दूसरे से उलझ गए थे । अन्तर केवल इतना ही था कि इस बार मैं गिरी थी, पहले तुम गिरे थे ।

कालिज और कालिज के सहपाठी मेरे लिए भी उतने ही नए थे, जितने तुम्हारे लिए । हमारी-तुम्हारी पहचान तो थी ही नहीं, लेकिन तो भी पहले ही दिन ऐसी घटना हो जाने से मुझे कुछ खेद होने की वजाय कुछ सुख ही हुआ ।

एफ० ए० पास कर लेने तक मैं उन बातों को बहुत-कुछ समझने लगी थी, जिसे हम-तुम, 'जवानी की उमंग' कहते हैं । लेकिन मुझे कभी उनमें दिलचस्पी नहीं हुई । मेरी एक सहपाठिन थी—विमला । जब वह अभी फर्स्ट ईयर में ही पढ़ती थी तो वह इन बातों में कुछ इतना उलझ गई थी कि मुझे उससे-घृणा-मो होने लगी । उसकी चंचलता में बाह्य सौंदर्य तो जरूर था, लेकिन किसी के मन में उसकी इज्जत न थी, वह आये दिन मुझे अपने प्रेम-पत्र दिखाया करती । हर रोज़ एक ही-जैसी खुशामद और कोरे आडम्बर की बातें पढ़कर मैं इतना ऊब गई कि मेरा कभी इधर मुकाब हो नहीं हुआ ।

उस दिन तुम्हारे साथ टकराते ही, जैसे एकाएक विमला के सब प्रेम-पत्र मेरी आँखों के सामने आ-आकर कुछ इस तरह मधुर नर्तन करने लगे कि न जाने मैं कितनी देर तक उन्हीं में उलझी खड़ी रह गई । विमला के प्रेमी ने लिखा था—“लोग कहते हैं—उन दोनों की आँखें चार हो गई हैं, लेकिन मुझे ऐसा लगता है, मेरी तेरी आँखें चार होते ही दो रह गई हैं । तुम मेरा

आँखों में और मैं तुम्हारी आँखों में कुछ इस तरह बस गए कि अब वह आँखें दो ही रह गई हैं।" और उस दिन रजनी बाबू सच मानियेगा, मैं अपनी आँखों में रह-रह कर तुम्हारी आँखों को देखने की चेष्टा करती रही।

तुम्हारे साथ छू जाने से मैं थोड़ी-सी सिहर-सी उठी थी, दिल में स्पन्दन-सा हुआ था और ओठों पर कम्पन-सा। मैं समझती थी, 'एक्सीडेंट' हुआ। उसकी कुछ घबराहट है, लेकिन वह घबराहट तो जैसे मेरे लिए बेचैनी-सी बन गई और वह इस कदर बढ़ी कि मैं उस घबराहट के लिए आकुल-सी रहने लगी।

मैं उन दिनों जीवन के उस काल में से गुजर रही थी, जब मानव अपने दिल का एक साथी पा लेना चाहता है। जब मानव की आत्मा एकाकीपन से ऊब-सी जाती है और इस नीरव नीरस एकाकी मन को अपने संगी के संग से काट डालना चाहती है। मुझे ऐसा भास हुआ, मेरे जीवन के एकाकीपन को काटने का यन्त्र तुम्हारे हाथ में है, लेकिन जीवन के आरम्भिक काल में इतनी रिजर्व और मानिनी रहने के कारण मैंने अपने दिल की इस मानता को अपने अहं भाव का अपमान समझा और वह नीला, जो रजनी की ओर बराबर खिंची-सी चली गई थी, जैसे एकाएक लौट पड़ी।

मेरी इस वापसी में एक अनोखापन था, एक ऐसी दुविधा थी—जिसके चक्र से मैं आज तक निकल न सकी। मैंने अपने अहं भाव का कहना मानकर दिल का डाँट दिया था, आत्मा की उस पुकार को अनसुना कर दिया था, लेकिन कुछ ही दिनों में मैंने अनुभव किया कि मुझे झुकना ही पड़ेगा। मेरा अहं भाव दिल के आगे हार गया। आत्मा की पुकार कुछ इतनी ऊँची उठी कि मेरे रूप-दर्प का स्वर वहीं कहीं विलीन हो गया।

इतना होने पर भी मैं तुम्हारी ओर आ नहीं सकी। इसका कारण था—मेरा स्वभाव। मैं तुम्हें हर रोज कालिज में देखती। जी कभी-कभी तुमसे दो-चार बातें करने को अकुला उठता, लेकिन तभी पता नहीं कहाँ से वह पराजित अहं भाव एका-एक जाग उठता और मैं अनजाने ही दूसरी ओर मुड़ जाती।

अहं भाव और आत्मा के इस संघर्ष का अनोखा परिणाम निकला। मैं अपनी इसी अवस्था में सुख अनुभव करने लगी। मेरा जी चाहता आपसे मिलूँ, लेकिन अहं भाव रोक देता। इस असमंजस में मुझे कुछ इतना सुख मिला कि मैंने इससे निकलने की चेष्टा ही त्याग दी। इन दोनों के संघर्ष में मैं पिसी जरूर जा रही थी, इससे मुझे असह्य पीड़ा भी होती थी, लेकिन इसमें वही सुख था, जो परवान को शमा पर जलने में होता है। मैंने पीड़ा में उसी सुख का भाव पाया, जो भ्रमर कमल की पंखड़ियों के बीच दब जाने पर पाता है !

और सच ही मैं सोचने लगी, क्या मेरा-तुम्हारा यह प्रेम स्वर्गीय नहीं है। क्या इस सम्बन्ध में भगवान् की आत्मा हमें आशीर्वाद नहीं दे रही। मैंने तो इसमें उसी आनन्द की झलक पाई जो भक्त अपने भगवान् को देखे बिना ही केवल उसकी कल्पना-मात्र से पाता है। रजनी बाबू, मैंने एक ऐसे प्यार को अपनाया।

निश्चय ही इसमें स्वर नहीं था, लेकिन क्या इसने बातें न कीं ? तुम नहीं जानते शायद, मैं जानती हूँ, रात बिता दी मैंने बातें करते हुए, मेरा मुँह नहीं खुला, मेरे ओठ नहीं हिले, मेरे कानों में कोई शब्द भी नहीं पड़ा—लेकिन बातें हुईं, रात-रात भर बातें, दिन-दिन भर बातें ! इस मूक-प्यार के मुँह से मैंने वह प्यार-भरे गीत सुने, जिनसे प्रणय-रस टपक करता था।

अपने इस प्यार में मैं इतनी तल्लीन हो गई कि दुनिया का प्यार मुझे वासना-लिप्त दीखने लगा । एक रोज़ विमला आई, बोली—“अभी-अभी अमृतसर से आ रही हूँ, वहाँ हम सब दीवाली देखने गए थे । गाड़ी में बहुत भीड़ थी । अचानक वह मिल गए पिताजी से पूछ कर उन्होंने मुझे भी सैकिंड क्लास के डिब्बे में बिठा लिया और नीला ! आज जो भर-भर उनसे बातें हुई !” और न जाने वह क्या-क्या कहती रही । मुझे उससे कुछ घृणा-सी होने लगी । तुम ही बताओ, यह सिवा छिछोरेपन के और क्या है ?

मैंने अपना दिल टटोला । अब दिल और अहं भाव का संघर्ष नहीं था । मेरे इस व्यवहार ने शायद उन दोनों में सुलह करा दी थी । अब अगर मैं चाहती तो तुम्हारे साथ खुलकर बातें कर सकती थी । अहं भाव मेरे रास्ते से हट गया था, लेकिन अब मैं स्वयं उम जगह से हटना न चाहती थी, जहाँ से एक अपार वेदना का आरम्भ हुआ था । मैं अपनी इसी अवस्था में इतनी खुश थी कि उससे हटने के विचार-मात्र से मुझे कष्ट होने लगता । मुझे ऐसा लगता जैसे मेरे लिए घोर नर्क का चौड़ा द्वार खुल रहा है ।

मेरे इस व्यवहार से कालिज के लड़के मुझे ‘खूबसूरत यत्थर’ कहने लगे थे, लेकिन तुमने कभी ऐसा नहीं कहा, इससे मेरे दिल में तुम्हारे प्रति श्रद्धा और सम्मान बढ़ गया । इस तरह मेरी जीवन-नौका बड़ी सौम्यता के साथ संसार-सागर पर तिर रही थी !

लेकिन तभी वह चट्टान से टकरा गई !

उस दिन शाम को मेरी-तुम्हारी टकरा हो गई । मैं तुमसे दूर-दूर रहने में सुख अनुभव करती थी । टकरा लगते ही जैसे

मेरी नौका टूट गई, वह बना-बनाया संसार टुकड़े-टुकड़े हो गया। मैं गिरी और मैंने अनुभव किया कि मैं अपने पथ से विचलित हो गई हूँ। यह सब घटनावश हुआ था, लेकिन यह बात मेरे दिमाग पर इतनी छा गई कि मैं हर समय एक महान् वेदना, एक असह्य पीड़ा तले दबी-सी रहने लगी। मुझे अनुभव हुआ, मैंने जिस प्रेम की रचना की थी, जिस प्यार की नींव डाली थी, वह अब जर्जर होकर गिरा चाहता है ! और इसका प्रभाव इतना बढ़ा कि मुझे जीने का कुछ भी लोभ न रहा।

पिछले चार दिनों से मैं इसी उलझन में उलझी हूँ। मैं पढ़ नहीं सकी। सो नहीं सकी। कुछ भी तो कर नहीं सकी। आखिर मैं एक निश्चय पर पहुँची हूँ। मैंने जीवन का अन्त करने की सोची है।

मेरा—मूक-अस्पृश्य प्रेम टूट गया है। अब इस जीवन का भी कुछ लाभ नहीं। लेकिन जीवन का अन्त करने के लिए मैं विष नहीं खाऊँगी, गले में फंदा भी नहीं डालूँगी, अपने इस दिल पर गोली भी नहीं दागूँगी। मैंने मरने का निश्चय किया है और मुझे विश्वास है कि प्रातःकाल तक मैं इस संसार से विदा हो जाऊँगी।

मैंने सुना है, कुछ सितारों की टक्कर से यह दुनिया बनी है और एक दिन किसी की टक्कर से ही यह खत्म हो जायगी। मेरा प्रेम भी तुम्हारी टक्कर से पैदा हुआ था, और आज तुम्हारी ही टक्कर से खत्म हो रहा है।

मैं अब जा रही हूँ—जब तक तुम यह खत पढ़ोगे, तब तक मैं इस लोक में न हूँगी। मेरी इच्छा हो रही है तुम्हें जाती बार 'राजा' कहकर पुकारूँ—लेकिन नहीं—यह मेरे 'मूक-प्यार' का अपमान है !

तुम सुखी रहना, रजनो बाबू !

—नीला”

— x —

रजनीकांत अन्तिम पंक्तियाँ पढ़ते ही पागल हो उठा। वह भागा-भागा नीला के घर की ओर दौड़ा। ताँगा करने लगा, लेकिन दिल ने कहा —“देर हो जायगी। जल्दी कर शायद उसे मिल सके।” लेकिन यह सब व्यर्थ था रजनीकांत के पहुँचने से पहले ही नीला का प्राण पंछी नील गगन में उड़ चुका था। नीला के पिताजी ने आँसू पीते हुए कहा—“रात को अच्छी भली सोई थी, सुबह मरी पड़ी थी !” डाक्टरों ने परीक्षा भी की, लेकिन आत्म-हत्या का कोई चिह्न न था।

— x —

उसी दिन कालेज में इस बात की चर्चा थी। लड़कों में उस तरह बातें चल रही थीं। एक ने यों ही कह दिया—“नीला एक खूबसूरत पत्थर था !”

दूसरा बोला—“नहीं—रसीला पत्थर !”

शीका

एक बड़े अफसर ने आते ही फौजी सैल्यूट की और शीका के हाथ में ताजा 'तिंग-न्यूज' अमाते हुए उसका ध्यान एक समाचार की ओर आकर्षित किया। 'तिंग-न्यूज' के पहले ही पृष्ठ पर मोटे-मोटे अक्षरों में छपा था—

"अभी-अभी सूचना मिली है कि जापान तीनसीन का घेरा उठाने के बाद तिंग के ऐतिहासिक नगर को जीतने का निश्चय कर चुका है। विश्वस्त सूत्र से पता लगा है कि फौज के कुछ दस्ते कमाण्डर प्यूङ्ग के अधीन इस ओर रवाना भी हो चुके हैं..."

शीका तिंग का गवर्नर था, फौजों का कमाण्डर भी। प्रायः लोग उसे सेनापति शीका के ही नाम से जानते थे। वह इतना अच्छा प्रबन्धक न था, जितना अच्छा कि सिपाही। आज से बीस वर्ष पहले जब जापानी सेना ने तिंग का मुहासरा किया था तो अकेले शीका ने उनके दाँत खट्टे कर दिए थे। तभी चीन की सरकार ने खुश होकर उसे तिंग का गवर्नर बना दिया था। उसकी तलवार में जोर था और उसकी आवाज में एक ऐसा आकर्षण कि सब लोग उसके कहने पर मर मिटने को तैयार हो जाते।

लेकिन आज—आज शीका पहले का शीका न था। उसके हाथ में तलवार तो थी, लेकिन वह चलती न थी, उसकी आवाज में आकर्षण तो था, लेकिन वह निकलती न थी। शीका वह जवान था, जिसने अपना यौवन बखेर दिया हो।

आज से पहले कई बार जनरल च्याँगकाई शोक ने उसे बुला भेजा था, लेकिन शीका ने हर बार टाल दिया। उसके हृदय में देश के लिए प्रेम तो था, पर न जाने क्यों वह कुछ रुकावट-सी अनुभव करता। आज तक कभी ऐसा नहीं हुआ कि देश दुश्मनों द्वारा रौंदा जाय और शीका हाथ-पर-हाथ धरे बैठा रहे, किन्तु अब शीका पहले का शीका न था।

अखबार लाने वाले उस बड़े अफसर का विचार था कि यह समाचार पढ़ते ही शीका फड़क उठेगा, गुस्से से दाँत पीसने लगेगा। परन्तु वह सोये सागर की सोई लहर की तरह शान्त भाव से बैठा रहा। पत्र के पन्ने का एक कोना मुँह में चबाकर बोला—“जापानियों ने तिँग लेने की ठानी है, ले लें, ! उनके भाग्य अच्छे हैं, शीका कमजोर हो गया है न !”

अफसर हैरान था। शीका के इस पतन पर उसकी आँखों में पानी भर आया। शीका ने देखा तो कहा—“रोते हो दोस्त, फौजी तो रोया नहीं करते। देखो, तुमने मुझे कभी रोते देखा है ?”

वह कहना चाहता था कि राते तो नहीं, रो-रोकर मर जाते देखा है, लेकिन अपनी हिचकियों के कारण वह बोल नहीं सका। शीका जोर से हँसा। एक भयंकर गूँज पैदा हुई, मानो किसी ने सर्वनाश का नाद बजा दिया हो।

— x —

नगर में यह समाचार जंगल की आग की तरह फैल गया। हर ओर हाहाकार मच गया, लोग त्राहि-त्राहि पुकारने लगे। जिनका दिल छोटा था, वह नगर छोड़ने की तैयारी करने लगे। दो दिन बाद रेडियो पर एक फौजी कमाण्डर बोल रहा था—

“जापानी तूफ़ान की तरह बढ़े चले आ रहे हैं। तीन सौ के बाद वह तिँग को जीतना चाहते हैं। उनकी फौजें चौबीस

घण्टे तक तिग नगर की सीमा पर पहुँच जायँगी। कौन जानता है, इस पुराने ऐतिहासिक नगर का क्या बने, लेकिन हमें घबराना नहीं चाहिए। धीरज और वीरता से काम लेना चाहिए। और याद रखो, स्वतन्त्र आदमी कभी नहीं मरते, गुलाम दिन में हजार बार मरता है। डटकर मुकाबिला करो...!"

जिस किसी ने भी इस ब्राडकास्ट को सुना उसके तन-बदन में आग लग गई। प्रतिहिंसा की ज्वाला से तप्त आँखें धधकते अंगारे बरसाने लगीं। सब लोग मौत से जूझने की तैयारी करने लगे।

लेकिन शीका बिल्कुल बेखबर सो रहा था। अभी तक नगर की रक्षा का रत्ती-भर प्रबंध भी न हो पाया था। तोपें अभा तक तोपखाने में पड़ी थीं। नगर की दीवार में जहाँ-तहाँ छेद हो रहे थे। सिपाही अपने-अपने घरों में बैठे हुए थे। सेनापति की आज्ञा के बिना वह आ भी कैसे सकते थे और चौबीस घंटे तक जापान की तूफानी फौजें तिग की सीमा पर पहुँचने वाली थीं।

आशंका से लोगों के दिल काँप उठे। भावी विनाश की कल्पना से उनके रोयें खड़े हो गए। भारी तूफान के समय यदि नाव का मल्लाह सो जाय तो सर्वनाश के सिवा और कुछ नहीं होता। तिग के निवासी ऐसी ही नाव पर सवार थे, जिसका मल्लाह सो गया हो।

बड़े-बड़े अफसर शीका के मकान पर एकत्रित हुए। तिग की दुरवस्था का उन्होंने इतना भोषण चित्र खींचा कि कायर-से-कायर भी लड़-मरने को तैयार हो जाता, किन्तु शीका तो जैसे कुछ सुनता ही न था। जापानियों के आक्रमण से वह उसी तरह बेपरवाह था, जैसा कोई साधारण जानवर होता है। उसे समझा-समझा कर सब परेशान हो गए। आखिर उन्होंने अपनी

समझ के मुताबिक फौजी तैयारियाँ शुरू कर दीं। दूटी दीवार की मरम्मत हो गई। जहाँ-तहाँ तोपें गाड़ दी गईं। लोगों को हर समय सतर्क रहने को कह दिया गया। किंतु, हर किसी ने अनुभव किया कि महा प्रलय खड्ग और खप्पर लेकर तिग के आँगन में तांडव कर रही है।

— x —

उसी दिन सायंकाल को चारपाई पर लेटी हुई एक युवती के सिरहाने बैठा शीका कह रहा था—“मीशी ! आज सब लोग आये थे। कहते थे, लड़ाई का प्रबन्ध करो। नहीं तो सारा नगर उजड़ जायगा। लाखों व्यक्तियों का खून मेरे सिर होगा।”

मीशी चौंक पड़ी—“तो क्या तुम लड़ने जा रहे हो ?” और तब कम्रल से मुँह ढककर वह सिसकने लगी।

“न मीशी ! जब तुम्हें एक बार कह चुका हूँ कि नहीं जाऊँगा, तो फिर क्यों रोती हो, पगली !”

मीशी आँखें पोंछती हुई उसके गले से लिपट गई। शीका ने उसके बालों में अँगुलियाँ डालकर उन्हें सहलाते हुए कहा—“सो रहो, व्यर्थ चिंता मत करो। मैं कहीं न जाऊँगा।” और तब मीशी के देखने से पहले ही उसने आँखों से दुलकते अपने आँसू पोंछ डाले।

मीशी शीका की बहन थी, विधवा। उसका पति पिछली लड़ाई में मारा गया था। तब से वह लड़ाई से बहुत डरती है। उसका दिल इतना कमजोर हो गया था कि किसी की ज़रा-सी बात नहीं सह सकती थी। इसीलिए शीका ने ब्याह भी न कराया था। उसे भय था कि कहीं उसकी बहन मीशी को दुःख न हो। उसने जन्म-भर क्वाँरा रहने की प्रतिज्ञा की थी। उसके साथ उसने

मीशी को वचन दिया था कि वह कभी लड़ाई में न जायगा, उसका भाई उसके पति की तरह उससे बिछुड़ न सकेगा ।

— x —

जापानियों के पहुँचने में केवल बारह घण्टे रह गए थे । नगर के सब दरवाजे बन्द कर दिए । लोगों को यह आज्ञा दे दी गई थी कि वे सूर्य अस्त होने से पहले ही सब प्रकार की रोशनी बुझा दें । अफ़सर बड़ी तेज़ी से इधर-उधर आ-जा रहे थे । नगर में कोई भी निश्चित न था ।

हौले-हौले वक्त बीतने लगा । सुबह के बाद दोपहर, दोपहर के बाद शाम, शाम के बाद रात और तभी ज़ोर से धमाका हुआ—जापानी फौजें पहुँच गई थीं ।

बात-की-बात में उन्होंने नगर को घेर लिया । दोनों ओर से धमासान लड़ाई होने लगी । मृत्यु का आलिंगन करने के लिए रणबाँकुरे शत्रु से जूझ गए । गोलियों की साँय-साँय और धाँय-धाँय से कान फटने लगे ।

जापानियों की भरसक कोशिश के बावजूद वह नगर के अंदर दाखिल नहीं हो सके । अनजान खिलाड़ियों ने उस्ताद की ग़ैर-हाजिरी में भी अच्छा मोर्चा बाँधा था । लोगों के बैठते दिलों में एक आस बँधने लगी । उनके टिमटिमाते दीये की लौ तेल से सिंचने लगी, लेकिन जापान वालों के भाग्य अच्छे थे । तिग की फौजें बिना कमाण्डर के नियंत्रण में न रह सकीं । लोगों की आशा निराशा में पलटने लगी । वह लौ, जो ऊपर उठी थी, फिर घने अंधकार में विलीन होने लगी । अधीनस्थ अफ़सरों ने अपनी समझ और साहस के मुताबिक उन्हें काबू में रखा, लेकिन कब तक ?

तिग-वासियों ने शीका के मकान तले चिल्लाकर कहा—

“सेनापति ! हमें सर्वनाश से बचाओ !” और इसके साथ ही एक भीषण-भैरव चीत्कार हुआ । लोगों ने क्रोधावेश में चीख कर कहा—“शीका ! हम तुम्हारी आस पर यहाँ बैठे थे ।” लेकिन शीका ने मानो कुछ सुना ही नहीं । एक बार खिड़की पर आकर वह फिर लौट गया ।

मीशी ने कहा—“लौट आये भैया, अच्छा किया । क्या तुम्हारे बिना आँर कोई लड़ने वाला नहीं है ?”

तभी लोग फिर चिल्लाये—“सेनापति ! हमें बचाओ ।”

“इनको क्या हो रहा है, भैया !” मीशी ने कहा और फिर उठते हुए बोली—“ठहरो, ठहरो मैं इनको उत्तर देती हूँ ।”

जब यह खिड़की पर पहुँची तो उसने देखा कि नीचे लोग खड़े हैं । सबके चेहरे पर हवाइयाँ उड़ रही हैं । बच्चे-बूढ़े, मर्द-औरतें सब मौत की ओढ़नी ओढ़े खड़े हैं । वह बिलख रहे हैं । उसने देखा, उनके सिरों पर काल मण्डरा रहा है । उसके थोठ हिले, लेकिन बिना कुछ कहे ही वह वापस आ गई । और शीका की ओर एक बार दख कर अपने कमरे में चली गई ।

शीका आराम कुर्सी पर बैठा हुआ था । नीचे लोग अभी तक चीख रहे थे और दर्द भरी आवाज़ में शीका को बुला रहे थे । तभी कमरे के अंदर से ‘धाय’ की आवाज़ आई । शीका चौंक पड़ा । दौड़ता-दौड़ता अंदर गया । देखा तो अवाक् रह गया— सामने मीशी खून से लथपथ पड़ी थी । शीका चीख पड़ा । पास वाले मेज़ पर पड़े कागज़ को उठाया, लिखा था—

“शीका !

तुम केवल मेरे ही भाई ही नहीं हो । तिग की सारी औरतें तुम्हारी बहनें हैं । उनको बचाना तुम्हारा कर्त्तव्य है ।

मैं भूल कर रही थी। तुम्हें मोह हो गया था। अब सब ठीक हो जायगा।

बुद्ध भगवान् तुम्हें सफलता प्रदान करें।

—मीशी—

— x —

इसके बाद शीका के एक ही इशारे से सारी फौजें फिर इकट्ठी होने लगीं। उसकी गर्जती आवाज से रिपु-दल काँप उठा और तीन दिन के घेरे के बाद कई हजार सिपाहियों को तिग की भेंट चढ़ा जापानी वापिस भाग गए, लेकिन जाती बार शीका को भी साथ लेते गये। एक ही गोली से उसकी जीवन-लीला समाप्त हो चुकी थी। उसने अपनी बहन को वचन दिया था न कि वह उसके पति की तरह उससे बिछुड़ेगा नहीं, फिर उससे अलग कैसे रहता !

मुझे मौत चाहिये

भगवान् तुम्हारा भला करें, जज बहादुर ! यह बूढ़ा आसीस के सिवा तुम्हें और क्या दे सकता है ?

बेहतर होता अगर तुम भी छोटी अदालत की तरह मेरा फैसला कर देते। यह गवाहियाँ, बयान, वहस, इन सबकी जरूरत क्या है ? क्या यह वकील मुझे बचाना चाहते हैं ? मैं तो अब जीना नहीं चाहता। फिर यह दौड़-धूप क्यों जज साहब ! लेकिन मैं जानता हूँ। तुम जवानों के दिमाग में जो बात गमा जाय, वह पूरी हुए बिना हटती नहीं। ठीक है, जवानी की सनक जो ठहरी, जज साहब ! मैं तुम्हारा अपमान नहीं कर रहा। इस कुर्सी की प्रतिष्ठा मैं जानता हूँ।

मैं चाहता था, तुम मेरा बयान न सुनो। मुझसे मेरे अपराध का कारण न पूछो। तुम जवान हो, जवानों का दिल मजबूत होते हुए भी, करुणा की मामूली आहट पाकर द्रवित हो उठता है। अत्याचार के विरुद्ध विद्रोह की भावना उनके अणु-अणु में व्याप्त होती है। किसी पीड़ित का भास पाते ही तुम उत्तेजित हो उठते हो। मैं नहीं चाहता, तुम्हें ऐसे ही अपने बड़ों का नाराजगी उठानी पड़े। मैं बूढ़ा हूँ, दुनिया देख चुका हूँ। जीने की मुझे ज़रा-सी लालसा भी तो नहीं। फिर क्यों मुफ्त में तुम लोगों को परेशान करूँ !

देवकीनन्दन का मैंने कत्ल किया था, मैं अपना जुर्म मानता हूँ। कत्ल की सजा मौत होती है—तुम नहीं जानते ! फिर

क्यों मेरी बात सुनना चाहते हो ? बस केवल हाथ की कलम को ज़रा हिला-भर देने की ज़रूरत है, चिट्ठे कागज़ पर काले रंग के दो-तीन धब्बे पड़ जायेंगे । शहरी न्याय के दिल को कालिख इस कागज़ पर आ जायगी, और दीनू की मौत का परवाना कट जायगा !

जज साहब ! हिला दो कलम को । मेरी ओर क्यों देख रहे हो ? मैं अपराधी हूँ, मैं हत्यारा हूँ, मैंने खून किया है ! फिर देरी क्यों ? मेरी ओर इसी तरह देखते रहोगे, जज साहब ! न देखो, मुझ बूढ़े में इतनी ताकत नहीं कि तुमसे आँख मिला सकूँ ।

ओह, तो क्या बिन कहे मेरा फैसला न होगा । तो जवान ! मेरी कहानी लंबी है, मैं इतनी देर खड़ा न रह सकूँगा । जीवन के थपेड़ों ने मुझे खड़ा रहने के क़ाबिल ही नहीं छोड़ा । अगर इजाज़त हो तो मैं बैठ जाऊँ ? कुर्सी, न मुझे नहीं ज़रूरत इसकी । गरीब देहातियों को इस पर बैठने की आदत ही नहीं, सलीका ही नहीं ।

हाँ, तो जज साहब, देवकी मेरा लँगोटिया यार था । गाँव से बाहर बड़े बटवृत्त के तले एक पण्डित हमें पढ़ाया करते थे । पढ़ना हमें क्या था, योंही खेत पर काम न करना पड़े, इसलिए पाठ-शाला के बहाने घर से भाग आया करते । दिन-भर लोगों के बगीचे होते और हम होते ।

सुख के दिन बीतते कभी देर नहीं लगती और दुःख के दिन काटे नहीं कटते । अपने जीवन के पहले बारह बरस मैंने बड़े आराम से गुज़ारे । भाग्य ने पलटा खाया, हमारे बापू को साँप ने काटा और वह चलते बने । घर में ले-देकर मैं ही एक लड़का था । बारह बरस का हट्टा-कट्टा तो काफ़ी, लेकिन अक्ल

से बिलकुल खाली । चाचा ने आकर खेती-बाड़ी का काम अपने हाथ में ले लिया ।

माँ समझी, बोझ कम हुआ, लेकिन चाचा ने बोझ इस तरह हल्का किया कि बोझ का कहीं निशान तक न रहा । दो ही बरस में सारी जायदाद को उसने इस तरह हड़पा कि किसी को सन्देह तक नहीं हुआ । एक दिन चाचा ने माँ से कहा—“भाभी ! खेतों में कीड़े पैदा हो गए हैं । कुछ पैदा ही नहीं हुआ । पिछले दो बरस में खर्च और लगान बराबर बन रहे हैं । अब क्या करें ?” और इसी तरह से कई बार उसने कहा । आखिर एक दिन उसने आधे से अधिक खेत बेच डाले—लगान देना था, खर्च चलाना था । बेचता न तो और क्या करता ?

जज साहब ! तुम सोच रहे होगे, देवकी के कुल में इसका क्या सम्बन्ध ? लेकिन मुझे आज आपको अपनी कहानी सुनानी है । इसीलिए कहे जा रहा हूँ । मालूम होता है, आज मैं सब-कुछ कह जाऊँगा । संभव है, तुम्हें बुरा मालूम हो, लेकिन अब तो मुझे कहना ही है ।

इस तरह हमारा बसा-बसाया घर उजाड़कर चाचा चलते बने मैंने तो नहीं देखा-सुना, जातो बार वह बहुत-सा रुपया अपने साथ ले गए । कहते हैं, वह बहुत खुश थं । ऐसे, जैसे उन्होंने कोई जागीर पा ली हो ।

खैर, लक्ष्मी सदा कभी किसी के पास नहीं रही । हमारे पास कैसे रहती । माँ ने भोंपड़ी बना ली । उसी में हम रहने लगे । मैं भी जवान हो गया था । कुछ काम-काज भी करने लगा था । देवकी ने मुझे उठने में बहुत सहायता दी । गरीबी में भी उसने मेरा साथ नहीं छोड़ा । जब कभी, जितनी भी उससे बन पड़ी उसने मेरी मदद की ।

अपने पर मुझे सदा भरोसा रहा है और भगवान् का मैंने सदा दामन थामा है। इसीलिए थोड़े दिनों में मैं इस योग्य हो गया कि अपने पाँव पर खड़ा हो सकूँ। मुझे यह मानने में रत्ती-भर भी संकोच नहीं कि यदि देवकी मेरी सहायता न करता तो मैं इतनी जल्दी सँभल न सकता।

तो भी मैंने उसे कत्ल कर दिया। एक रात पैनी छुरी उसके सीने में घोंप दी। लहू का एक फव्वार-सा छूटा--मेरे कपड़े उससे रँग गए, लाल हो गए, लेकिन मेरी आँखों में धधकते अंगारे लोहू की लालिमा से कहीं अधिक लाल थे। उनमें एक आग भड़क रही थी, जो देवकी का रक्त पीने पर भी शांत न हो सकी !

जज साहब ! मैंने उसे कत्ल कर दिया। कत्ल की सजा मौत है। भिक्कू कयाँ रहे हो ! यह देखो, मेरा गला रस्से से भूल जाने के लिए तड़प-सा रहा है !

तुम सोचते हो कि मैंने दोस्त को कत्ल कर दिया, इसलिए मरना चाहता हूँ। नहीं, दीनू ने जब कभी भी कोई काम किया है, अरुद्धा या बुरा, तो बाद में उस पर पछताया नहीं। मेरा बस चले तो, अगले दस जन्मों में, जहाँ कहीं भी वह मुझे मिले, मैं उसका सीना छलनी-छलनी कर दूँ। उसका अंग अँग काटकर कौआँ और चिलों को खिला दूँ।

वह मेरा दोस्त था। जीवन के तेईस बरस हमने एक साथ बिताए थे। एक दूम्रे की हँसी-खुशी में सदा आपस में सुख-दुःख बाँटा था। तो भी मैंने उसकी हत्या की, उसके खून से अपने हाथ रँगेंगे। मुझे इसका दुःख नहीं, रत्ती-भर अरुसोस नहीं। उसने जैसा किया वैसा पाया।

किसी को गर्भवती स्त्री से बलात्कार, जज साहब !
 उसने वह पाप किया, जिसका तुम्हारे पास कोई दण्ड नहीं ।
 उसने मेरी पत्नी पर बुरी नज़र डाली थी । मैं ही उसे दण्ड दे
 सकता था !

मेरी पत्नी ने उससे गिड़गिड़ा कर कहा—“तुम अमीर
 हो, यह ठीक है, लेकिन हम गरीबों की भी कोई इज्जत होती है,
 आबरू होती है ! देखो, मुझ पर यह अत्याचार न करो ।”

लेकिन उसके सिर पाप सवार था । मेरी मदद करके उसने
 समझा—मानो मेरे सर्वस्व का वह मालिक है । वह शराब के
 नशे में चूर था । मेरी पत्नी ने फिर कहा—“देवकी ! मेरे
 पेट है । दो जीवों की हत्या मोल न ले । !” पर वह होशो-
 हवाश खो बैठा था ।

जज साहब ! मैंने कभी सोचा भी न था कि मेरा दोस्त,
 मेरा अपना दोस्त ऐसी हरकत करेगा । मेरी पत्नी दो दिन तड़पने
 के बाद मर गई और उसके साथ ही एक और जीव बिन-जन्मे
 मौत के मुँह में चला गया ।

मैं पागल हो गया । प्रतिहिंसा की ज्वाला मेरे रोम-रोम में
 सुलगने लगी...और मेरी पत्नी की धधकती चिता अभी शांत
 भी न होने पाई थी कि श्मशान घाट पर देवकी का शव पहुँच
 गया । उसने मेरी पत्नी की हत्या की थी । मैंने उसकी इह-लीला
 समाप्त कर दी ।

मेरी पत्नी की मृत्यु का कारण देवकी है, यह किसी को
 पता न था—लेकिन मेरे हत्यारे होने की बात छिपी न रह सकी
 इसलिए भाग निकला । मेरी गिरफ्तारी के लिए इनाम घोषित
 किया गया । “पाँच सौ रुपया नक़द इनाम—जो दोनू हत्यारे को
 पकड़ेगा, उसे ५००) दिया जायगा !”

लेकिन मुझे कोई पकड़ नहीं सका ।

जीवन-निर्वाह के लिए मुझे पैसे चाहिए थे, रोटी और कपड़े की जरूरत थी । भागा हुआ हत्यारा कोई व्यापार तो कर नहीं सकता । बिबश होकर मुझे चोरी करनी पड़ी । चोर बनने के बाद मैं डाकू बन गया । सारे देहातों में दीनू डाकू का आतंक छा गया । पहले मेरी गिरफ्तारी का इनाम ५००) रु० था, अब बढ़कर १५००) हो गया ।

लेकिन भगवान् जानता है कि मैंने कभी किसी ऐसे व्यक्ति को नहीं लूटा, जिसके पास लुटाने को कुछ न हो । मैं जो लूटता उसमें से अधिकांश गरीबों को बाँट देता । जहाँ अमीर मुझे कोसते, वहाँ गरीब मुझे आसीस देते ।

जज साहब ! आपकी इजाजत हो तो मैं जरा रुक जाऊँ । बूढ़ा हो गया हूँ, ज्यादा देर तक बोल नहीं सकता, जज साहब ! तुम्हारी जवानी बनी रहे ।

हाँ, तो आ गए तुम । सुना है अंगरेज लोग दांपहर का खाना खाते हैं । 'लंच' कहते हैं न इसे । शायद तुम उसी से निपटकर आ रहे हो । अपने-अपने देस का रिवाज है !

तो जज साहब ! एक रात अपने गाँव जाना था मुझे । मुझे वहाँ क्या काम हो सकता था, यह बताने की जरूरत नहीं, लेकिन वहाँ जाकर मैं अपना काम नहीं कर सका ।

मैंने देखा, रधिया—देवकी की पत्नी सर्दियों की उस ठिठुरती रात में गाँव से बाहर एक खेत की मेंड़ के पास बैठी है । थोड़ी आग सुलग रही है और उसकी गोद में एक बच्ची स्तनों से चिपटी हुई है ।

उसे देखकर मुझे दुःख हुआ ।

मेरे ही कारण उसे इस अवस्था पर पहुँचना पड़ा। अगर देवकी जीवित होता तो क्या उसकी यह दुर्दशा होती मेरी आत्मा ने मुझे कोसा। मुझे खयाल आया, यह मेरे दो की पत्नी है। बुराई देवकी ने की थी, इस बेचारी का क्या दो-इसे यह यातना क्यों सहनी पड़े ?

अगर उसे पता लग जाता कि मैं दीनू हूँ, उसके पात हत्यारा, तो शायद वह कभी मेरे साथ न जाती। इसलिए भाई बनकर उसका हाथ थामा और रामू के रूप में गिरफ्तारी तक उसका भाई रहा।

मैं जब कभी भी उसके पास जाता तो अपना मुँह इस छिपाए रहता कि वह कभी मुझे पहचान नहीं सकी। एक-दो बार उसे संदेह जरूर हुआ कि रामू इतना छिप-छिपकर क्यों रहा है, लेकिन उसे इस बात का कभी भास भी न हुआ कि उस घावों पर मरहम लगाने वाला रामू ही उसके घावों का कारण-दीनू है !

दिन बीतते गए !

दस बरस गुजर गए। रधिया खुश थी। उसकी बच्ची मुन्नी अब बारह बरस की हो गई थी। खाने-पीने का उसे कोई कष्ट न था। कभी-कभी देवकी की याद करके वह थोड़ी उदास जरूर हो जाती थी। परन्तु मुन्नी को खेलती-कूदती देख कर उसका दुःख दूर हो जाता।

इन दोनों का पवित्र जीवन देखकर मुझे चोरी डकैत से घृणा-सी होने लगी। पर मेरे पास इसके सिवा जीवन-निर्वाण का दूसरा उपाय न था। तो भी मैंने अनुभव किया कि अब यह काम न कर सकूँगा। और जज साहब ! सच मानिए, मैं य काम नहीं कर सका। एक-दो बार प्रयत्न करने पर भी मैं इस सफल नहीं हो पाया।

रधिया को इस बात का पता ही न था कि रामू डाकू है, इशितहारी डाकू। उसे जब कभी जितने रुपये की जरूरत होती, मैं उसे दे आता, लेकिन अब पहले-जैसी बात न थी। मेरे पास थोड़ा रुपया बच रहा था। लगभग दो बरस तो उससे आराम से कट गए। रधिया को कभी किसी चीज़ की किल्लत महसूस नहीं हुई। हौले-हौले उसे पता लग गया कि अब रामू के पास अधिक रुपया नहीं रहा। और शायद इसीलिए उसने बहुत कम खर्च करना शुरू कर दिया।

उसके फटे-पुराने कपड़े देखकर मेरे जी में आता एक बार फिर अपना धन्धा पकड़ूँ, लेकिन दिल होते हुए भी हिम्मत ने मेरा साथ न दिया। दो-अढ़ाई बरस निठल्ला बैठे रहने से, मुझमें सुस्ती भी आ गई थी।

और जज साहब ! एक दिन की बात है, मैं रधिया को मिलने गया। उदास तो उसे मैंने आगे भी कई बार देखा था, लेकिन उस दिन तो कोशिश करने के बावजूद मैं उसे खुश नहीं कर सका। मैंने मुन्नी को बुलाया—“मुन्नी !”

वह दौड़ती हुई आकर माँ के पास बैठ गई। आगे जब कभी भी मुन्नी रधिया के पास आकर इस तरह बैठती तो रधिया का जी खिल उठता। लेकिन आज उसका मुँह उसी तरह कुम्हलाया रहा। मेरे दिल को चोट पहुँची। मैंने पूछा—“क्या बात है, वहन !”

जैसे उसकी आँखों में कोई नदी रुकी पड़ी थी। मेरे ऐसा कहने से उसका बाँध टूट जाय और वह फूटकार से बह निकले। मेरे से अब और न देखा गया। जीवन में पहली बार मेरी आँखों की कोर में पानी चमक उठा।

रधिया बोली—“भैया !” और तब इशारा करके वह मुझे दूसरे कमरे में ले गई। बोली—“देखते हो, मुन्नी जवान हा गई। अब इसका ब्याह करना है।”

वह बोला — “अगर आज इसके पिता जीवित होते... !” आगे वह बोल न सकी। मेरा भी जी भर आया। बात टालने की चेष्टा करते हुए मैंने कहा—“बाह ! अगर वह नहीं तो मैं तो हूँ। बोलो, कोई लड़का-बड़का देखा है !”

धोती की फटी कन्नी से आँखों की कोर का पानी पोंछते हुए वह बोला—“लड़का तो देखा है, लेकिन बिन पैसे इसे ब्याहूँगी कैसे ?”

पैसा ! मैं सब समझ गया। लेकिन उसे अपनी हालत बता कर मैं और दुखी करना नहीं चाहता था। इसलिए कहा—“पैसा बाह, कितना चाहिए तुम्हें ! लाख, दो लाख—कितना ?”

मेरी बात सुनकर वह थोड़ी हँसी। अपनी चेष्टा मफल होने पर मेरे ओठों पर भी मुस्कान दौड़ गई। रधिया कहने लगी—गमू भैया ! तुम तो हर बात का मजाक उड़ाते हो। लाख-दो लाख क्या करूँगी। बस यही दस-बारह सौ रुपये मिल जाते तो उनके नाम के अनुसार मुन्नी का ब्याह कर देती।

“बस इतना ! तो कल ही लो !”

कहने को तो मैं कह गया, लेकिन देने को मेरे पास सौ-दो सौ से ज्यादा न थे। मैंने सोचा—कहाँ से दूँगा इसे ? लेकिन मुझे अपने पर भरोसा है, मैंने सदा भगवान् का दामन थामा है।

अगले दिन सुबह मैंने थाने में सूचना दे दी। दीनू डाकू अमुक मकान में एक स्त्री के साथ रहता है। वह स्त्री मैं हूँ—देवकी की पत्नी।

कोई चार घंटे के बाद रधिया का मकान घेर लिया गया। मैं तो सुबह से ही वहाँ बैठा था। इतनी पुलिस देखकर माँ-बेटी घबरा उठीं। मुन्नी मुझसे चिपककर बोली—“चाचा! यह क्यों आये?”

मैंने कहा—“ऐसे ही आये होंगे। ठहरो मैं अभी पता करता हूँ!”

हाथ में छुरा लेकर मैं दरवाजे पर पहुँचा। मुझे देखते ही इन्स्पेक्टर चिल्लाया—“पकड़ो!”

मैंने ऊँची आवाज़ में कहा—“ठहरो! चिल्लाने की ज़रूरत नहीं। मैं कहीं भागूँगा नहीं। आप मेहरबानी करके मेरी गिरफ्तारी का इनाम रधिया को दे दें!”

रधिया ने यह माजरा देखा तो भौंचक्की-सी रह गई। झपटकर उसने मुझे अन्दर खींचा और दरवाज़ा बन्द कर लिया। मेरे पाँव पर गिर कर बोली—“तुम दोनू हा, मुझे यह पता न था। जब तुम मिले थे, अगर तब पता लगता तो शायद तुम्हारा खून पी जाती, लेकिन अब रामू! भाग सकते हो तो भाग जाओ!”

मैं हँसा—“न बहन, अब नहीं। हट न करो। देखो पुलिस वाले दरवाज़ा तोड़ रहे हैं। मैं अब जाता हूँ। मेरी गिरफ्तारी से तुम्हें पन्द्रह सौ रुपये मिलेंगे। सम्भव है, एक-दो-सौ पुलिस वाले खा जायँ। तो भी दस-बारह सौ से तुम्हें ज्यादा ही मिलेगा। इससे मुन्नी का ब्याह बड़ी शान से करना।”

तभी पुलिस वाले दरवाज़ा तोड़ कर अन्दर आ घुसे और उन्होंने मुझे कसकर पकड़ लिया।

बोली—“चलो!”

रधिया और मुन्नी दोनों आँखें फाड़फाड़ कर मेरी ओर देख रहे थे। मैंने प्यार भरी निगाहों से उनकी ओर एक बार देखा और फिर चुपके से पुलिस वालों के साथ हो लिया।

जज साहब ! मैंने पता कर लिया है। रधिया को तेरह-सौ रुपये मिल गए हैं। अब मुझे जीने की इच्छा नहीं। मुन्नी का ब्याह मजे में हो जायगा। मेरे दोस्त की बेटी है न वह, दोस्त बुरा था तो क्या हुआ, उसने तो मेरा कुछ नहीं बिगाड़ा।

ओह ! तुम्हारी आँखों में भी पानी चमक रहा है ! शायद तुम मुझे छोड़ देने की सोच रहे हो, लेकिन भगवान् के लिए ऐसा न करना ! मैं अब जीना नहीं चाहता, मुझे फाँसी की सजा दे दो !

मेरी आयु पूरी हो गई है, जज साहब !

मुझे मौत चाहिए !

